PK
2098
.S534
S8

सुबह होती है
शाम होती है

शांताधी शुक्ल

LIBRARY OF THE
UNIVERSITY OF ILLINOIS
AT URBANA-CHAMPAIGN

PK
2098
.S534
S8

I'm green
>30% Biobased
Verified by ASTM D6866
CoLibri
COVER SYSTEM ®
Made in Italy

सुबह होती है शाम होती है

गंगाधर शुक्ल

बंगीय हिन्दी परिषद्—कलकत्ता

प्रकाशक :—
बंगीय हिन्दी परिषद्
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

प्रथम संस्करण १९५७

मूल्य—तीन रुपये पचहत्तर न० पै०

मुद्रक :—
ज्योति प्रिन्टिङ्ग एण्ड पब्लिशिंग प्रेस,
४, रामजीदास जेटिया लेन,
कलकत्ता-७

PK
2098
.S534
S8

समर्पण

जिनकी सतत प्रेरणा
से मैं कला का उपासक
हो सका
उन्हीं पितृ-तुल्य चाचा जी
को
सादर—

H51a

वक्तव्य

xxxxxxxxxx

आज के युग की सबसे बड़ी विशेषता है—निर्माण-चेतना की जागरूकता। प्रत्येक दिशा में नव-निर्माण का स्वर गूँज रहा है। ऐसी स्थिति में हिन्दी साहित्य का स्रष्टा भी शिथिल नहीं। वह तो साहित्य के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग को स्वस्थ एवं पुष्ट देखना चाहता है—और यही कारण है कि आज का साहित्य पुष्पित-पल्लवित होता हुआ—अपने अंग-प्रत्यंग से भरा-पूरा सतत् गतिमान है। प्रगति की इस होड़ में बंगीय हिन्दी-परिषद् युग के साथ कदम मिलाती हुई अपने ध्येय मार्ग पर अविराम गति से बढ़ती चली जा रही है और अपनी हर मंज़िल पर मील का पत्थर गाड़ती हुई—आज यह अपने विकास-क्रम की पन्द्रहवीं मंज़िल पर पहुंच रही है—अपना यह अभिनव प्रकाशन 'सुबह होती है—शाम होती है'—लेकर। कहना न होगा कि पं० गंगाधर शुक्ल की पुष्ट लेखनी का यह स्वस्थ अवदान हिन्दी नाटक शैली की परम्परा में एक नई कड़ी ही नहीं—एक नया मोड़ भी है। प्रत्येक अंक अपने में पूर्ण, एक, एकांकी का सा स्वाद देता है—तथा सारे अंक मिल कर पूरे 'नाटक' की गरिमा और प्रवाह लिये हुए हैं। इस कृति का 'एकता में अनेकता' और 'अनेकता में एकता' का नव-विधान किसी परिपाटी-बद्ध अनुक्रमणिका की अपेक्षा नहीं रखता। वस्तुतः टेकनीक की दृष्टि से—यह इसकी एक अपनी विशेषता है।

परिषद इसके प्रकाशन का श्रेय लेकर अपने को गौरवान्वित समझती है। हिन्दी-संसार के सामने यह कृति सादर प्रस्तुत की जा रही है—आशा है संसार इसका स्वागत करेगा—तथा हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देगा।

बंगीय हिन्दी परिषद्
कलकत्ता-
रास-पूर्णिमा
संवत् २०१४ वि०

केशव देव उपाध्याय
उर्मिला भंडारी
[संयुक्त मंत्री]

अपनी बात

मैं लिखता तो हूं परन्तु हंसना, खेलना, इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अपने पात्रों के बीच कुछ ज्यादा बन पड़ता है, क्योंकि उसमें न कोई संकोच और न परेशानी, मगन-मन जैसा कुछ बना, किया; गाहे बगाहे कोई बड़ी सी बात किसी से कहला दी या बहुत महत्वपूर्ण या कुछ और ऐसा ही, किन्तु जब समां ऐसा हो, जैसा कि इस समय है, तो और कुछ न सही असमंजस तो खै़र है ही। कैसे कहूं कि हाथ क़लम पर है क्या करें लाचार है, वैसे मन बगलें झांक रहा है। बहुत कुछ वही हालत समझिये जो हमारी आपकी ठेल ठाल कर मंच पर भाषण-निमित्त चढ़ा दिये जाने पर होती है। बात यह है कि मैं साधारण श्रेणी में से ही हूं जो अधिकतर दर्शक या श्रोता होते हैं, न कि उनमें से, जो कि हर समय या असमय इसी ताक में रहते हैं कि मंच ख़ाली मिले और वह भाषण हेतु जा चढ़ें। खै़र तो आज्ञा दीजिये श्रीमन्! कि कुछ निवेदन करूं—मगर थोड़ा कहा ज्यादा समझियेगा ऐसी प्रार्थना है।

आये दिन सुबह से शाम तक एक नहीं अनेक ऐसी घटनायें घटती रहती हैं जिनमें अपनी भाग दौड़ में लगे रहने से प्रायः हमें किसी रस को खोजने की न तो इच्छा रहती है और न उसके लिये समुचित समय ही। मेरा मत है कि दैनिक घटनाओं में अन्य रसों के अतिरिक्त हास्य भी प्रचुर मात्रा में रहता है। यदि आप किसी दिन की घटनाओं पर किसी समय फिर से दृष्टिपात करें जब आप काम से वापस घर लौटते हैं, चाय का प्याला हाथ में होता है, और मुंह में

सिगरेट (यदि आप पीते हैं तो—नहीं तो महज़ ड्रामें के लिये आप ऐसा करें तो ठीक नहीं) तो मुमकिन है मेरी बात आप मानने के मूड में हों। अपनी बात को और समझाने के लिये ही यह चौदह गवाहियां नाटकों के रूप में आपके सामने पेश हैं। मैं उनसे सहमत नहीं, जो बड़ा नाम, बहुत अधिक अनुभव के बिना किसी को आलोचना का अधिकारी मानते ही नहीं। मैं तो कहूंगा कि हम में से और कुछ नहीं आलोचक तो प्रायः सभी होते ही हैं। इस तरह यकीनन आप भी होंगे ही। गवाहियों को बिना जिरह तथा पक्की परिक्षा के आप स्वीकार नहीं करेंगे, यह मुझे पता है। माना कि एक नहीं कई आपकी पैनी दृष्टि से 'खेत' रहें, फिर भी यदि दो चार भी मैदान में जम सके तो आपका ध्यान मेरे मत की ओर आकर्षित होगा, ऐसी आशा करता हूं।

कोई भी नाटक रंगमंच पर खेला जा सके ऐसा तो होना ही चाहिये और यदि ऐसा न हो पाये तो यह उस कृति का दुर्भाग्य है। प्रस्तुत नाटकों में अनुभव का सहारा लेकर इसका पूरा ध्यान रक्खा गया है कि संयोजकोंके सामने कोई विशेष कठिनाइयां न आयें। सभी नाटकोंके दृश्य एक या दो तक ही सीमित हैं। इस दृश्य निर्देश से यदि किसी में रंगमंचीय व्यवस्था की दृष्टि से कुछ कठिनाई की संभावना है तो वह' हम तो सफर करते हैं' नाटक में हो सकती है। यह जानते हुए भी मैं उसको संकलन में रखने का लोभ संवरण न कर सका, आप पढ़ देखें कि आखिर ऐसी भी क्या बात थी।

स्टेज की व्यवस्था को सरल बनाने की ओर विशेष ध्यान रखने का यत्न रहा है फिर भी यदि पर्दे आदि की तैयारी न हो सके तो केवल एक साधारण 'बैक ड्राप' के सामने ही कुछ अन्य साधनों के साथ प्रायः सभी नाटक खेले जा सकेंगे ऐसा मेरा अनुमान है। एक सुझाव है कि यदि लाउड स्पीकर तथा आर्क लाइटका उचित प्रबन्ध हो, तो पात्र परिचय उनकी सहायता से कराया जाय। जिस समय परिचय लाउड स्पीकर पर कराया जा रहाहो, पात्र एक-एक कर लाइट

के नीचे आयें और यदि संभव हो तो मूक-अभिनय द्वारा अपनी वर्णित विशेषताओं का प्रदर्शन कर सकें तो वे रंजकता और भी बढ़ा सकने में समर्थ होंगे।

हर नाटक को खेलने में बीस से पच्चीस मिनट लगेंगे प्रायः इससे ज्यादा या कम समय का, संकलित नाटकों में से कोई नहीं है। मुख्य पात्र सब में एक ही हैं इसलिये इच्छा, समय, और आवश्यकतानुसार एक, दो या तीन नाटकों को अभिनीत किया जा सकता है। हर नाटक अपने में सर्वथा पूर्ण होते हुए भी दूसरे से संबद्ध भी है क्योंकि एक ही परिवार के दैनिक जीवन की घटनायें ही कथा वस्तु की प्रेरिका हैं।

संकलन के प्रस्तुतीकरण में एक दूसरा प्रयास—उसको एक उपन्यास का सा रूप दे सकने का भी है। 'का सा' इसलिये कि वस्तुतः तो यह नाटक हैं पर यदि उनको यूंही पढ़ा जाय तो घटनाओं को आप इस प्रकार क्रमबद्ध भी पायेंगे कि उलझन न होगी। मुख्य पात्रों का परिचय एक ही स्थान पर दिये जानेका उद्देश्य यही है कि पाठकों के लिथे जहां वह रुचिकर हो सके वहां भूमिका करने वाले को पात्र के सम्बन्ध में संक्षिप्त से तनिक अधिक जानकारी भी हो, जो कि उसके लिये मेरा अनुमान है आवश्यक तथा उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखक :—

बुरा न मानें तो !

कुछ मित्रों का कहना है कि नये लोगों को जानने, पहिचानने और समझने का काम खुद करना चाहिये और इसके लिये यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं कि कोई साहब बीच में—आपसे मिलिये, आप हैं वगैर:" कहने के लिये उपस्थित हों ही। कहते हैं कि यह आदत सरासर मज़ा बिगाड़ देती है, वैसे ही जैसे पढ़ने के लिये उठाई गई किताब की कहानीकी, ख़ूबियों और (आवश्यक है) ख़राबियों का पहले ही बता दिया जाना, जिसके बाद उस किताब को सिवा खिड़की (अगर घर में है और खुली है) से बाहर फेंकने के और कुछ करने को जी ही नहीं चाहता। मगर जहां इन मित्रों का ख़याल रखना ज़रूरी है तो उनका डर भी, जो कि बिना परिचय कराये मजाल क्या, कि, बोल चाल, पहिचान तो दूर, राम-राम, दुआ सलाम, सिर हिला डुली की भी, खैर छोड़िये बड़ी बातें हैं, चेहरे पर एक शिकन भी न आने दें। मगर मित्र दोनों हैं फिर किसकी नाराज़ी मोल लूं यही धर्म संकट है और सामने आप हैं। जाने आप क्या चाहते हैं ? इस लिये निवेदन है कि परिचय के सम्बन्ध में—"आप तकलीफ न करें"—मंडली वालों में से यदि आप हैं तो प्रार्थना है कि इन कुछ पृष्ठों को बिला संकोच पलट जाइये ज़रा आगे ही स्वागत के लिये वह सभी लोग स्वयं आपको तत्पर मिलेंगे, जिनको, मेरा मन कहता है, आप यूं ही खूब जानते पहिचानते होंगे। उन सभी से पास पड़ोस, आफिस या खुद अपने घर में आप अक्सर मिले होंगे। जैसे आप हैं, आपके मित्र हम हैं, और भी हैं, मगर जो भी हैं नये होते हुए भी, हैं जाने पहिचाने निपट अपरिचित नहीं।

नाथूराम—नाथूराम से मिलिये आप अधेड़ आयु के व्यक्ति, कभी चश्मा पहिनते हैं कभी नहीं, बहुत मोटे तो क्या पर दुबले पतले भी नहीं। धोती पर कमीज़, सर पर कभी साफा तो कभी गोल फेल्टवाली टोपी बिराजती है। बात करते समय अक्सर टोपी उतार कर सिर खुजाते रहते हैं और नहीं तो साफे को उचकाकर अपने-अब गिने चुने बालोंका हिसाब-किताब जमा-बाकी बैठाते रहने की भी आदत है। वैसे किसी भी बात पर डट कर दृढ़ता से जमे रहने या विचार प्रकट करने का साहस आपमें कतई नहीं। दादाजी से दबते हैं, पत्नी से डरते हैं, और तो और नौकरानीसे भी सख्ती बरतना आपके लिये एक तरह से असम्भव है। वजह और कुछ नहीं बस हिम्मत ही साथ नहीं देती। थोड़े में बात कुछ ऐसी है कि कभी 'यह डर' तो कभी 'वह डर' उनको समझ (ज़रा कम ही है) बूझ (ज़ाहिर है समझ से भी कम) कर चलने में बाधा स्वरूप मिलते ही रहते हैं। विचार आपके न नये हैं और न पुराने ही, ढुल-मुल हैं। मुमकिन है कि यह सब केवल इसलिये, क्योंकि राशि है आपकी 'कन्या'।

सुनयना—सुनयनाजी श्री नाथूराम की पत्नी हैं। यहां नाम बड़े और दर्शन थोड़े वाली बात लागू इसलिये होती है कि आप निरन्तर चश्मा धारण किये रहती हैं। जरा सा घूंघट निका-लती हैं वो भी किसी पर्दे के ख्यालसे नहीं केवल इसलिये कि एक तो बात बात पर, उसको पीछे-आगे खिसका कर अपने गुस्से को ठीक से ज़ाहिर कर सकें, दूसरे, यह कि गुस्सैली निगाहोंको अपराधी (ज्यादातर आपके अपने पति नाथूराम) की ओर फोकस किया जा सके और इस तरह उनकी गुस्सैली निगाहों की तेज़ी मद्धिम न पड़ जाय। जा बेजा हर बात पर उलझने और डट कर अपने विचार तथा मत उछालने का साहस ही नहीं है, बात आगे बढ़कर अब आदत बन चुकी है।

दादाजी का ज़रा खयाल ज़रूर करती हैं, वैसे और किसीसे न दबती हैं, न डरती हैं और नौकरानीकी बिसात ही क्या, स्वयं लाला नाथूराम के साथ भी सख्ती से पेश आने में ज़रा भी हिचकिचाहट आपमें रत्ती भर भी नहीं है। इस काम में प्रवीण तो आप हैं ही साथ ही साथ रियाज़ भी खूब बढ़ा चढ़ा है। करें भी आप क्या राशि की 'सिंह' जो ठहरीं।

पिरथी—आप लाला नाथूराम के पुत्र होते हुए भी सरासर नये ढंग और माडेल के 'यंग मैन' हैं। बी० एस० सी० प्रथम वर्ष के विद्यार्थी कम 'स्टूडेन्ड' ही ज्याद समझिये। ड्रामें-नाटक तथा अन्य सभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विशेष रुचि और लिखाई-पढ़ाई वैसे ही तफ़रीहन। पैन्ट ऊंची नीचे से कुछ ज्यादा ही मुड़ी हुई, कभी मैनीला शर्ट तो कभी सांगानेरी (एक खास छपाई की छींट) कपड़े की बुशशर्ट, बालों की लटों में निराले खम वो भी एक नहीं अनेक। बात करनेमें कुछ न पूछिये, अपने आपको ज़रूरत से ज्यादा अक़्मन्द समझते रहने का आज के नये ज़माने का संक्रामक राज-रोग। किसी को कुछ न समझने व उल्टी-सुल्टी सुना देनेमें न कोई···हिचकिचाहट और न परहेज़; निशानेपर दादाजी हों, माताजी हों, या स्वयं पिताजी ही क्यों न हों। पुराने-पन के कट्टर विरोधी, नये के पक्के हिमायती, सर्वथा मार्डन युगीन। थोड़े में प्रगतिशीलता के स्वयं में प्रतीक ही समझिये। राशि रही आपकी 'मकर'।

काशी बाई—नाथूराम जी की सुपुत्री अपने भाई पिरथी की योग्य बहिन बल्कि उनसे भी हाथ दो हाथ आगे। स्वभावकी चरपरी शायद इसलिये कि राशिकी आप हैं 'वृश्चिक'। नये ज़माने की पौध में से निहायत चुनिन्दा टाइप की, दो चोटी वाली 'मिस साहब'। एक चोटी पीठ पर उछाल कर दूसरी से खेलते रहने की आदत और जब-तब स्लेक्स धारण करनेका इ ादा आपका

निरन्तर ही रहता है। बात जरा जल्दी जल्दी करती हैं, ज्यादा करती हैं, और इसीलिये ज़ाहिर है कि सभी सही हों, दुरूस्त हों, ऐसा मुमकिन नहीं। वैसे हर किसीसे हर बात पर उलझते रहने का आपको अच्छा अभ्यास है। मुंह तोड़ जवाब देने में अपना सानी नहीं रखतीं। दिनचर्यामें ऊपर बताई बातोंसे ज़रा फुरसत नहीं मिलती और अगर मिली तो फिर कभी गाना-गुनगुनाना, कभी हंसना और कुछ नहीं तो वही एक चोटी पीठपर और दूसरी हाथमें लिये खेलते रहनेका नियम, शायद उस रियाज़ को बनाये रखनेके लिये, जिसके बिना ऐसी हरक़त निहायत भोंड़ी लगती है।

दादाजी—नाथूराम के स्वर्गीय पिता के अन्तरंग मित्र। ज़ाहिर है कि बूढ़े होंगे ही, पर ज़रा जवान टाइप के। कमीज़, धोती पहिनते हैं और कभी पैजामा भी; पर वास्कटका हर समय होना ज़रूरी है जिसकी जेब में घड़ी और गले में उसी का पिरोया हुआ काला धागा मौजूद रहता है। वैसे दूसरी चीजें भी वास्कट की जेब में रहती हैं जैसे दांत खोदने, कान साफ करने के चांदी के औजार, मनीबैग, कलम, पेन्सिल व चश्मा रखने का केस वगैरः। चश्मा नाक पर जाने या मुमकिन है अनजान में खिसका हुआ रहता है, जिसमें से झांकते या घूरते रहने की आदत है। हर नई चीज़ को शककी निगाह से देखते हैं। यहां तक कि एक तरह से नये ज़माने की हवा से भी आपको परहेज़ है। पुराने के पक्षपाती (जो कि अन्ध विश्वास ही अधिक है) लटकों, हिकमतों और पुराने नुस्खों के आगे आज के विज्ञान युग की सभी देनों को ओछा और फिज़ूल समझते हैं। थोड़े में यूं कि जो भी हैं जैसे कुछ हैं, बस ठीक हैं, मगन हैं।

लोकनाथ—लोकनाथ जी नाथूराम जी के सहपाठी मित्र हैं। बदनके भारी उन्हीं के हम उम्र, कुछ चालाक तबियत के हैं तो, मगर

वह सब पैदायशी बुद्धूपन मार्का, आकृति में छुपी रहती है (यानी की चालाकी)। कुछ बातों में नाथूराम से ज्यादा भी हैं जैसे मूछें ही लीजिये, जो कि हैं और खूब हैं; मगर नीचे को झुकी हुई। सर पर बालों की भी कमी नहीं मगर चारों ओर अनेकतामें विविधता लिये हुए हवामें झूमते हुए। कहते हैं कि जाने कितने कंघे टूट चुके पर बालों को नियम या संयम न दिलाया जा सका। पोशाक साधारण, वही पैजामा, कुर्ता और जवाहर कट। हां एक बात और एक डंडासा सदा लिये रहते हैं। जो कि छड़ी नहीं, क्योंकि ज्यादा भारी है और डंडा नहीं क्योंकि ज्यादा बड़ा नहीं। रूस, अमरीका, हालैंड, पोलैंड, से लेकर घना की राजनीति (ज्यादातर अख़बारी) की चर्चा ख़ूब करते हैं। वैसे आदमी साधारण हैं जैसे आम तौर पर हमारे आपके दोस्त होते हैं, यानी कि अभी खुश, ज़रा से में नाराज़, चाय-पानी मिला नहीं कि चट वहीं के वहीं।

मालती—लोकनाथ जी की पत्नी हैं। जैसे कि जार्जेट की साड़ी पहिने मध्यम वर्गीय परिवार की तमाम औरतें होती हैं जिनको देख कर और बहुत सोच विचार करने पर भी यह नहीं भान होता कि उनके जीवन का कोइ विशेष उद्देश्य यदि है, तो आख़िर क्या है ? मतलब यह कि मालती को आप ठीक वैसा ही समझें मगर ज़रा चंट टाइप। आयु सुनयना की सी ही, गुण भी बहुत कुछ वैसे ही, एक यही लीजिये कि मौका मिला नहीं कि चोट कर गईं।

कमल—कमल हैं सलवार, कुर्ता विभूषित, मेडिकल कालेज की 'स्टूडेन्ट', थोड़ा लरज़कर बोलने वाली, अंग्रेजी पसन्द, ज़रा में जिसकी नाक भौं चढ़ जाय, ऐसी बाबू लोकनाथ की सुपुत्री। काशीबाई की मित्र, कुछ आदतें आपस में मिलती हुई, तो कुछ अपनी दूसरी हम उम्रों से बिल्कुल अलग। जैसे एक यही कि रूमालकी तहें बराबर खोलते रहना और उसके बाद बन्द करते

रहना, ऐसे वैज्ञानिक मनोयोग के साथ कि मानों किसी 'फ्रॉग' की खाल में नाड़ियों की तलाश की जा रही हो। वैसे सूरत शक्ल की भली हैं, अच्छी हैं।

अचल—अचल लोकनाथ के द्वितीय पुत्र उम्र समझ में नहीं आती सात, आठ या छः कुछ भी हो सकती है। आपका भी जवाब नहीं, गुण इतने कि बखान नहीं हो सकते। थोड़ेमें समझ लिया जाय कि स्वयं शैतान द्वारा ट्रेनिंग प्राप्त आज के धुरन्धर मनो-वैज्ञानीय-विज्ञों के लिये चुनौती स्वरूप हैं।

पुरोहित—पुरोहितजी नाथूराम के परिवार के निकट के हैं, वैसे आदमी यह भी खूब हैं। सूरत शक्ल तो कुछ ख़ास नहीं, शायद इसीलिये तिलक ज़रा लंबा लगते हैं और कभी कभी दाढ़ी भी बढ़ा लिया करते हैं। गलेमें पटुका, मिर्जई पर रामनामी धोती, जरा ढीली वो भी पीली। दाहिने हाथमें पत्रा तथा एक अन्य पोटकीमें बंधी हुई कोई पुस्तक, बायें ने एक मुड़ी सी डंडा नुमा छड़ी जिसे बातों के निरन्तर दौरके साथ बराबर इस अन्दाज़ से हिलाते रहते हैं कि लगता यही है कि किसी भी समय पृथ्वी को ठेल कर व्योम में विचरने लगेंगे। आंखों की गति की न पूछें, बराबर चकमक जैसी; वैसे भी बातों में इशारे से तनिक ज्यादा ही काम लेते हैं। यूं समझ में इशारे ही शायद आ भी पाते हैं, क्योंकि बातें तो ग्रहों, उपग्रहों तथा कुग्रहोंकी ही करते हैं और या फिर सोने चांदी, रत्नों, घी शक्कर और उन सभी चीज़ों की जिनसे उनको लैस करा दिये जानेपर ही किसी के अनिष्टों से उसको बचाया जा सकता है। अपने फ़नमें माहिर हैं यानी कि अगर आप चंगुल में फंसे तो बस गये।

पंडितानी—पंडितानीजी नाथूराम की पड़ोसिन हैं। आयु में सुन-यना से कुछ इधर तो क्या, कुछ उधर ही होंगी। कुछेक बाल बाल भी पक चुके हैं, राम राम, भगवत-भजन तथा अन्यान्य ईश्वर भक्तिकी प्रचारक एवं स्वयं उपासिका होते हुए भी तबियत

की तेज़ तथा खुड़पेचिन हैं। आप उन विभूतियों में से हैं जो कि निमंत्रण न दिये जाने पर भी अपनी उपस्थिति से आपको कभी वंचित नहीं रखतीं। उनकी आंखों से बिना चश्मे के भी परे, कोई बात छुपती नहीं और खास तौर से वो जो आप कारणवश इनसे ही, नहीं सबसे ही छुपाना चाहें। उड़ाए हुए गुप्त रहस्यों की अन्यत्र, जानकारी करानेमें उनकी वाक्प्रतिभा कि कुछ पूछिये मत, बड़े-बड़ोंको चुटकी बजाते मात दे दें। इस काममें कुछ विशेष ही पटु हैं, बड़े-बड़ों, एक से एक टेढ़े मेढ़ोंको बगलें झांकते स्वयं हमने देखा है। पंडितानी जब बोलती हैं, तो क्या है वह भला सा मुहावरा कि बस मिसरी घोलती हैं। मगर वह कष्टदाई इतना होता है कि जैसे सारी घुली मिसरी की चाशनी मुंह या कानमें नहीं आपके सर पर उंडेल दी गई हो वो भी बड़े तकल्लुफ के साथ।

उमा—उमा हैं पंडितानी की पुत्री उन लड़कियों में से जिनका परिचय हमेशा 'मैट्रिक तक पढ़ी हैं', कहकर कराया जाता है, भले ही वह तीसरी, दूसरी, या चौथी के आस पास ही प्रायः रही हों। यूं चेहरे मोहेर की अच्छी अपटुडेट नुमा हैं। 'नुमा' इसलिये कि पैर में पायजेब पहिनती हैं। वैसे आदतन पाउडर, लाली, सुरमा, आलता तथा मय रूमाल के ही वे बाहर पदार्पण करती हैं। तेज़ आंख कान के अतिरिक्त बुद्धि भी कुशाग्र है वह भी ऐसी वैसी नहीं; वरन उस संगीन या किरच जैसी जो स्वयं निशाने के आर पार हो जाया करती है। उमा को आप उनकी मां का परिमार्जित नया संस्करण कह सकते हैं। और इस तरह महज़ समझने की ग़रज़ से यदि मां हैं एटम बाँम तो पुत्री 'क्लीन बाँम' पंडितानीकी योग्य पुत्रीसे उमा पानीदार भी कम नहीं। बात बात पर आंखोंमें पानी भर लाती हैं खालिस 'एच-टू-ओ' बार बार रूमाल उठ जाते हैं, समवेदना उमड़ पड़ती है ऐसी कि कुछ पूछिये मत। अन्दाज़ तो देखिये कि न वार किया, न खून बहा और

मैदान अपने हाथ रहा। फिर भला और कैसा होता है जिसे कहते हैं 'क्लीन बॉम' ?

पारबतिया—पारबतिया नई चालकी नौकरानी है, जो कि आप माने न माने मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की अच्छी जानकार होती हैं। कैसी कैसी बोली, कैसे हाव भाव, किस समय कैसी बात करने से किस तरह उनका अपना भला निश्चित है इसको सब पारबतिया इतना जानती है कि न जाने कितनोंको सबक सिखा दे। वैसे देखने में ओढनी, लहंगा हाथमें लाख की चूड़ियां माथे पर मारवाड़ी झूमर पहने एक साधारण कम उम्र ग्रामीण स्त्री ही लगेगी। पर हां जब मनोवैज्ञानिक एक्शन चल रहा हो तब देखिये, आंखों का ऊपर नीचे चकर-मकर होना, डब-डबा आना, बारम्बार लुगड़े के छोर से आंसू पोंछना कम, उसका अभिनय ज्यादा, आदि आदि यह सब इतना प्रभावशाली होगा कि आप फ़ौरन द्रवित होकर अपना फैसला सुना ही बैठेंगे। हम जानते हैं किसके पक्ष में। वैसे पारबतिया की रुचि घर के काम में कम, नाटक में ही अधिक है भी।

रानी—रानी नाथूराम की सलहज ठेठ दिल्ली की निवासिनी होते हुए भी साधारण रूप रंग की ही हैं, पर बात करने में चंट कुछ ऐसे टाइप कि, जो बात शुरू करने पर फिर चुप होना जानती ही नहीं, भले ही शुरू किये गये संवाद के उत्तर प्रत्युत्तर देने के दोनों ही काम स्वयं ही क्यूं न करने पड़ें। पोशाक में चिकन की सफेद गोट लगी साड़ी, और माथे पर जरा बड़ी सी बिन्दी, हाथों में ढेर सी चूड़ी, मुंह में ज्यादा से पान, जिससे मुंह पूरा बन्द न होता हो, और गले में हार, जिसको हर दम देखने वाले की सुविधा के लिये साड़ी सहेज कर सामने करते रहने का उपक्रम; यही सब थोड़े में रानी को अपना व्यक्तित्व देनेमें समर्थ होते हैं। अपने पति मंशाराम के ऊपर तो रोब डालने की ज़रूर आदत है। परन्तु अन्य सभी पुरुषों से बात करते समय आप

विशेष रूप से लजीली नम्रता व्यौहार में लाती हैं। ठोडी पर एक बड़ा सा तिल है जो भगवान का दिया नहीं स्वयं अर्जित है यानी साढ़े पांच रुपये ख़र्च करना पड़ा है।

मंशाराम—मंशाराम रानी के पति नाथूराम के साले हैं। चलते पुर्ज़े हैं, अपने आगे और किसी की चलने नहीं देते। हारे हैं तो एक अपनी पत्नी रानी से, जहां उनका कोई बस नहीं चलता। क्या करें लाचार हैं, वैसे आदमी समझदार, मिलनसार और फ़र्माबर्दार हैं। वैसे ही जैसे अमूनन हमारे आपके साले (साहबान बुरा न माने) हुआ करते हैं।

माया—माया नाथूराम के समझ लीजिये एक तरह से भतीजे हैं। बदन के भारी भरकम सूरत और शक्ल के बुद्धू और इसीलिये इस क़ैफ़ियत को छुपाने के लिये लगातार अपने पिछले बहादुरी और अक़्लमन्दीके किस्सोंका हवाला देते रहते हैं। राम जाने वह सब सच हों या झूठ, ख़ैर सच तो क्या होंगे, क्योंकि आप खाते बहुत हैं और बोलते हैं तो शायद ऐसा मानकर कि तमाम दूसरे आदमी बहरे हैं। पढ़े लिखे कुछ तो हैं ही क्योंकि कई साल से इंटर में फेल जो हो रहे हैं। पोशाक कुछ भी हो सकती है; जो कि, एक ऐसे लड़के की अनुमान की जा सके, जिसकी एक क्लास इंटर में ही आठ साल की स्टैंडिंग हो और जिसने शिक्षा प्राप्ति के लिये एक दो नहीं, चार चार कालेजों की धूल छान डाली हो। इस तरह माया ख़ूब चाहे न हों, मगर अंजर-पंजर, मांस, रूधिर, तथा गप्पें यदि सब साथ में रख कर देखी जांय तो यकीनन बहुत हैं—बल्कि ढेरों हैं।

और कहां तक आपको मिलाया जाय इस मित्र-मण्डली से मुझे तो खुद संकोच हो रहा है। अब तो यही ज्यादा ठीक रहेगा कि आप दूसरों से स्वयं मिल देखें क्योंकि जैसा कि मैंने आपसे पहले भी कहा है कि सब परिचित भले ही न हों, पर हैं जाने पहिचाने।

—:*:०:*:—

अनुक्रमणिका

१ इज़्ज़त का सवाल।
२ नमक मिर्च।
३ जब नींद नहीं आती।
४ ग्रह दशा।
५ समझने की बात है।
६ घरेलू इलाज।
७ बाल मनोविज्ञान।
८ आई० ए० एस० के उम्मीदवार।
९ करिश्मा।
१० हम तो सफ़र करते हैं।
११ लौट के आये।
१२ यह बात वह बात।
१३ चन्द्रमा की दशा।
१४ फ़िज़ूल ख़र्ची।

—❀○❀—

इज़्ज़त का सवाल

—:o:❋:o:❋:o:—

समय—सुबह के आठ बजे

स्थान—नाथूराम के घर का बरामदा

पहला दृश्य

दृश्य निर्देश :—

(बरामदे में एक ओर चौकी पर चाय का सामान रक्खे हुए सुनयना बैठी दीखती हैं) काशीबाई तथा पिरथी मोढ़ों पर बैठे चाय पी रहे हैं। सामने एक कैरम बोर्ड है। खेल भी रहे हैं। बांई ओर पड़े हुए तख़्त पर नाथूराम बनियाइन पहने बैठे अख़बार पढ़ रहे हैं। इस प्रकार बैठे हैं कि जब जब अख़बार पढ़ते हैं तो दर्शकों की ओर अख़बार रहता है उनका चेहरा नहीं दिखाई देता। बरामदे की सजावट ठीक वैसी ही जैसे कि अन्यत्र बताई जा चुकी है।

दूसरा दृश्य

सड़क पर रिक्शे से सामान उतारा जा रहा है। यदि

रिक्शा लाने के लिये स्थान न हो तो फिर उसको 'विंग्स' में दिखाया जा सकता है जहां से रिक्शेवाला जल्दी जल्दी सामान उतार उतार कर ला रहा है। सड़क के सीन के लिये एक पर्दे की आवश्यकता होगी, जो चाहे रंगबिरंगा हो, या फिर केवल एक रंग का, जो पहले दृश्य यानी बरामदे वाले को ढक सके।

पात्र :—

नाथूराम	काशी बाई
सुनयना	मंशाराम
पिरथी	रानी

और

रिक्शेवाला।

—:*:०:*:—

इज़्ज़त का सवाल

दृश्य एक

(सुबह का समय है नाथूराम अख़बार पढ़ रहे हैं। सुनयना, काशी, पिरथी साथ में बैठे हुए हैं। सुनयना सुपारी काट रही हैं।)

नाथू—(अख़बार से) ब्रह्मपुत्र नदी में भयानक बाढ़ आ गई। सुनती हो। अरे दस गांव तो बस यूं बह गये कि उनका नामोनिशान ही नहीं रहा।

सुनयना—अपने देश में गांवों की क्या कमी है, दस-बीस बह गये तो बह जांय मगर अपने घर की देखिये दरारें पड़ गई हैं जल्दी मरम्मत न हुई तो अगली बरसात तक बचेगा नहीं और घर! दस बीस नहीं एक ही है।

काशी—(कसीदा बनाते हुए) मां! मामा और मामी तो आज आ ही जायेंगे फिर उनको गोठ पर न ले चला जाय? मज़ा आ जायगा।

पिरथी—(जूते में पालिश करते हुए) मज़ा तो पीछे आयेगा पहले उनके ठहरने का इन्तज़ाम हो गया या नहीं? कमरा तक ठीक हुआ नहीं! कि बस गोठ ही सज रही है?

सुनयना—हां रे काशी! कमरा साफ़ सूफ किया या नहीं! शाम ही को तो आ रहे हैं। (मगन होकर) अबकी पूरे पांच साल पर भइया इधर आयेंगे।

नाथू—(उछल कर अखबार से पढ़ते हुए) वाह भई वाह। कमाल कर दिया 'नासेर' ने।

पिरथी—(चौंक कर) क्या हुआ बापू ?

काशी—क्या स्वेज नहर ले भागे ?

नाथू—नहीं यह तय हो गया कि भेजे जा रहे प्रतिनिधि मण्डल से वह बातचीत करेंगे।

पिरथी—(पालिश करते हुए) तो यह भी क्या कमाल हुआ। आज कल तो बातचीत-युग है ही। सुबह से शाम तक और होता क्या रहता है।

सुनयना—रोज़—जी हां, सुबह से शाम तक। मैं कहती हूं ऐ बात—बहादुरो ! कुछ काम की भी बात घड़ी दो घड़ी हो जाया करे न !

पिरथी—कुछ बात भी हो न मां कि सुबह सुबह तुमको लेक्चर की सूझी है। तुम तो बस पूरी 'जाँयकिलर' हो।

सुनयना—(बिगड़ कर) बड़ी अंग्रेजी पढ़ ली है। कहीं यह भी पढ़ा है कि घर में मेहमान आ रहे हैं उनके लिये आटा, दाल, चावल इन सब का भी कुछ तो पहले करना होगा या कि उन्हीं के सामने हर चीज मंगानी पड़ेगी। कुछ तो सोचा करो भले मानुसो।

नाथू—(अख़बार से) जर्मनी से टेकनिकल कमीशन भारत में सितम्बर तक आ रहा है।

काशी—(हंस कर) लो भाई सारी समस्या ही सुलझ गई।

पिरथी—क्या सुलझ गई वह आटे की चक्की आपको दे जायेंगे या कि आपकी बिगड़ी सीने की मशीन ठीक कर जायेंगे—क्यों ?

काशी—जी नहीं, हमारे भाई साहब की पुरानी बिगड़ी साइकिल ठीक करेंगे आखिर किसी तरह खुश हों तो। (हंसती है)

पिरथी—बन्द करो यह अपनी 'अन-इन्टेलीजेन्ट' हंसी।

काशी—कभी तो यह सच लगने लगता है कि पढ़ाई का स्टैण्डर्ड कुछ डांवाडोल ही है। जाओ जाओ, आटा पिसवा लाओ लपक कर भइया।

पिरथी—बापू! मैंने कहा मां! सुनती हो।

सुनयना—(नाराज़ होकर) दीवाने हैं। सब दीवाने।

नाथू—(अख़बार से) पौधा संरक्षण कार्यों से खाद्य उत्पादन में दस लाख टन की बढ़ोतरी हुई है। सुना रानी। भई कमाल कर दिया।

सुनयना—या ईश्वर! कभी कभी तो लगता है कि इस घर में कभी भी एक मिनट को भी अक्ल की बात होगी ही नहीं। (ज़ोर से) इस घर में मेहमान आने वाले हैं मेहमान।

पिरथी—कौन मामा न ?

काशी—मय मामी के।

नाथू—(अख़बार सामने से हटा कर) तो हुआ क्या, इस्तकबाल के लिये स्वयं बहिन मोर्चे पर है फिर डर काहे का। यूं तो जैसा घर तुम्हारा वैसे......हैं......हैं......हैं 'उनका' (जल्दी से) कहो तो अख़बार में आने की खबर छपाने का प्रबन्ध करूं।

सुनयना—पहले उनके खाने पीने का प्रबन्ध कर लो फिर अख़बार में ख़बर छपवाना। पूरे पांच बरस बाद आ रहे हैं भइया।

नाथू—(दर्शकों की ओर) गोया कि यह भी मेरा कुसूर है। बोलो तो, क्या करना चाहिये।

सुनयना—तो सुनो एक मन आटा पिसवा लो, कुछ मन दो मन कोयले......

नाथू—पिरथी...... ।

पिरथी—हां बापू।

नाथू—फिट हो जाओ। ज़रा नोट तो करो बेटा।

पिरथी—(जूता छोड़कर क़लम संभालते हुए) प्रस्तुत हूं—बोलिये।

सुनयना—एक मन आटा, पांच सेर बेसन, बीस सेर देहरादूनी चावल……

पिरथी—(चौंक कर) बीस सेर—देहरादूनी—बापू !

सुनयना—'चल', 'चल' लिखता क्यों नहीं घी दस सेर—केसर।

नाथू—(अख़बार पढ़ते हुए) कश्मीर संविधान का मसविदा तैयार—अयं। क्या कहा दस सेर केसर। मैंने कहा पिरथी की मां !!

सुनयना—हां ! हां ! कहो भी।

नाथू—यही कि दस सेर केसर का क्या होगा ?

सुनयना—(खीझकर) पतिदेव के माथे पर तिलक करूंगी। अखबार में जोंक की तरह क्यों चिपके हो। छोड़ दो पिंड उसका।

नाथू—हां-हां-नाराज़ क्यों होती हो सरकार (बिगड़ते हुए) मेरी कोई भी बात तुमको भायेगी, बस यही अक्सर सोचता रह जाता हूँ। कभी यह तो न सोचा होगा कि तुम्हारे इस बराबर के 'टोंकने', 'कोचने' का असर इन बच्चों पर कैसा पड़ेगा। अब अख़बार ही तो पढ़ रहा हूं और आपको परेशानी ऐसी है कि आपके मेहमान को जैसे बैठा गालियां दे रहा होऊं।

पिरथी—मां ! कुछ और लिखाना हो तो लिखाओ मेरा टाइम ख़राब हो रहा है।

सुनयना—(उस पर गुस्सा होती हुई) पहले जाकर दस दस सेर करके आटा पिसवा ला फिर आगे और लिखना पढ़ना करना।

पिरथी—तो सुन लो मां। घर के अन्दर चाहे जो काम करा लो मुझसे; पर बाहर सड़क पर गेहूं की गठरी सर पर ले जाना अपने बस की बात नहीं।

सुनयना—तो इसमें हुआ क्या ? घर का काम करते तेरे हाथ तो घिस न जायेंगे।

पिरथी—हाथ नहीं पर इज़्ज़त तो धूल में मिल जायेगी।

नाथू—नहीं बेटा पिरथी। ऐसा नहीं कहते। मां का कहना मानना चाहिये। और फिर अपना काम करने में शर्म कैसी ?

काशी– आस पड़ोस सभी जगह ऐसा होता है। अब कचरू को ही देखो न।

पिरथी—देख लिया कचरू को—कचरू की और मेरी बराबरी ?

काशी—क्यों 'मैथ्स' नहीं 'बायोलोजी' ले रखी है मगर है तो बी० एससी० ही में। कहो, कि नहीं।

पिरथी—बीच में तुम अपनी ज्ञान-तरंग अवश्य छेड़ोगी। मेरे सामने इज़्ज़त का सवाल है इज़्ज़त का।

सुनयना—अरे भई सुनो! किसकी इज़्ज़त का सवाल है ज़रा मैं भी तो सुनूं ?

पिरथी—(बिगड़ कर) तो तुम सबने कमर कस ली है इस बात पर कि लाला नाथूराम के सुपुत्र श्री पिरथी बाबू गेहूं की गठिया सिर पर उठाये आटा पिसाते सरे बाज़ार घूमते फिरें!

काशी—(सलाहन) सर पर क्यूं ? यूं मर्ज़ी की बात है। दस दस सेर पिसाने हैं। हाथ में लटका लो या कंधे पर रख लो (हंसती है) भइया! ज़रा सी अक्ल कभी न कभी खर्च कर ही दिया करो न, किस काम आयेगी पड़ी पड़ी।

पिरथी—मां। बापू। सुन रहे हैं आप। अब रोक लो नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा।

नाथू—(समझाते हुए) क्यों झगड़ा करते हो। शान्त हो जाओ। अब तुम लोग निरे बच्चे नहीं। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा। घर का काम है। नौकर अगर छुट्टी जाये तो काम हाथ से करना ही होगा।

सुनयना—(तेज़ होकर) यह ग़लत जगह पर लाड़ प्यार लड़कों को बिल्कुल बिगाड़ ही देगा, यह कोई नहीं समझता।

नाथू—(तेज़ी में) नहीं। तुम जो समझती हो। तुम्हीं डांट डपट कर काम कराओ न मैं बाज़ आया। आखिर किसने कहा था कि ऐसे वक्त पर नौकरों की छुट्टी कर दी जाये जब कि साले साहब मय अपनी मलिका के तशरीफ़ ला रहे हों ?

सुनयना—(ठोडी पर हाथ) अय-हय-ले सुने कोई, लगे मुझी पर तेवर बदलने। आजकल के नौकरों से उनकी मर्ज़ी के मुताबिक न चलने पर फौरन इस्तीफा मिलता है। वह भी निरी धमकी का नहीं, जो कि नित अख़बारों में छपते हैं कि 'चट' पेश और 'पट' वापिस।

काशी—ठीक कहती हो मां—यहां तो इस्तीफा 'चट' पेश और नौकर राम 'पट' ग़ायब।

पिरथी—मगर मैं आटा पिसाने नहीं जाऊंगा। नहीं जाऊंगा। नहीं जाऊंगा।

काशी—मां—मगर बर्तन मांजने का क्या इन्तज़ाम किया है? वह भी तो दूसरी परेशानी है।

सुनयना—(तेज़ी से) दो हाथ नहीं हैं!

पिरथी—(घबड़ा कर) हैं तो, पर क्या अब बर्तन मंजाये जायेंगे?

सुनयना—तू चुप रह। यह काम काशी का होगा।

काशी—(चीख़ कर) या भगवान! यानी कि बर्तन मुझे—नहीं—नहीं—नहीं।

सुनयना—क्यों क्या हुआ? कौन सी मेंहदी उतर जाने का डर है! बोल?

पिरथी—(उकसाते हुए) हां हां, बोलो मिस साहब। महज़ चन्द मिनटों का काम है और ख़ालिस 'घर का काम', बल्कि 'घर के अन्दर' का काम।

काशी—भइया!

पिरथी—हां। बहिन!! (हंसता है)

सुनयना—मुझे यह फिजूल के चोंचले बिलकुल पसन्द नहीं।

पिरथी—(दर्शकों की ओर) और क्या, फिजूल के चोंचले भी क्या कोई पसन्द करने की चीज़ हैं। भई अपने को भी पसन्द नहीं। बिलकुल नहीं।

सुनयना—तुम चुप रहो।

पिरथी—मैं चुप हूं। बिल्कुल चुप, कहो तो दम साध लूं।

नाथू—(अख़बार के पीछे से) अरे सुनती हो। नाप तौल की मैट्रिक प्रणाली के लागू होने में दस पन्द्रह बरस लगेंगे ये भी। हाँ…

सुनयना—या भगवान—इस अख़बार का पिंड छोड़ते हो या नहीं। कहती हूं सौत की तरह मेरी आंखों में यह खटक रहा है।

नाथू—(हंसता है) तुम तो कवि हो कवि। (अख़बार बन्द करता हुआ) फिर क्या तय हुआ ?

सुनयना—यही कि घर के बाहर का काम पिरथी और अन्दर का काशी करेगी।

पिरथी—मेरा जवाब सुन लिया जाये। (दृढ़ता से) मुझसे नहीं होगा।

काशी—और मेरा भी—घर के मेहमानों के सामने यह गन्दा काम वह भी ऐसे मेहमान जिनकी ख़ातिर में जाने क्या क्या पकवानों के ढेर बनें और अम्बार लगे बर्तनों का, ना भाई।

सुनयना—(पानदान ज़ोर से बन्द करके) अच्छा। तो फिर यह करेगा कौन ?

पिरथी—कोई करे अपना तो जवाब है।

काशी—अपना भी जवाब है। घर के लड़के हैं, टहलुवे नहीं।

सुनयना—जवाब कैसा ? टहलुवे ही जवाब दे सकते हैं "बच्चू" ! घर के लड़के नहीं।

नाथू—शान्त होकर विचार करो भाई, शान्त होकर। ज़माना अब अपना काम अपने हाथ करने का है। चलो आज तो नौकर छुट्टी पर गये हैं मगर 'आने वाले' कल तो 'नौकर युग' ही समाप्ति पर है, तब की सोचो।

काशी—(ज़ोर से) तो चाहते क्या हैं आप, कि लाला नाथूराम जी की लाडली सबके सामने बर्तन घिसती हुई नज़र आये ! यानी 'नौकर-युग' समाप्ति के बाद 'बेटी बर्तन मांजन युग' आरम्भ

हो ! वह भी घर आये मेहमानों के सामने ! अपनी इज़्ज़त की तो सोचिये।

पिरथी—तो क्या हुआ, कौन कहता है कि किसी के सामने बर्तन मांजो ? ज़रा सी अक़्ल खर्चो। बाथ-रूम में जाकर चट से मांज-मूंज डालो फिर बाहर मुस्कुराते हुए निकलो। किसी को क्या ख़बर होगी ? तरकीब मुझसे पूछो।

काशी—तो मैं क्यूं ? आप ही न निकलिये मुस्कुराते हुए ! कभी गाहे बगाहे मुस्कुराहट अगर आपके आ गई तो चेहरे पर सिलवटें तो पड़ नहीं जायेंगी। (मुंह चिढ़ा कर) तरकीब मुझसे पूछो !!

नाथू—भई मुझसे पूछो तो मैं फिर कहूंगा कि घर का काम करने में हिचकिचाहट होनी ही न चाहिये। अपना काम है पुराने ज़माने में तो……

पिरथी—जहां तक बातों का सवाल है हिचकिचाहट मुझे भी नहीं। बिल्कुल नहीं। पुराने ज़माने में बापू घर-घर चक्कियां थी। यह न कहियेगा ?

नाथू—(एकाएक) अरे हां। यह ठीक है। मैं कहता हूं सुनती हो ! तुम और काशी घर ही में आटा पीस लो तो कैसा रहे ?

सुनयना—(आंखें ऊपर घूंघट पीछे फिर ज़रा आगे) क्या कहा ? तो बात इस पर आ गई कि मुझसे चक्की पिसवाई जायेगी, पिस-नाई का काम कराया जायेगा ! वो भी अपनी भावज और भाई के सामने (रोते हुए) हे ईश्वर क्या यह दिन भी दिखाना था तुझे !

नाथू—(घबरा कर) क्या-क्या। यानी की क्या हो गया ? च-च-च। मैंने तो महज़ सलाह दी थी, बस। तुम तो बुरा मान गईं। सुनो भाई।

सुनयना—(वैसे ही सिसकियां लेते हुए) मेरे बाप की सात पुश्तों में भी चक्की को किसी ने हाथ नहीं लगाया और अब मेरे 'पति

देवता' और 'पुत्र राम' अपने राज में मुझसे यह भी कराने पर तुले हुए हैं।

पिरथी—यह तो बड़ा गोलमाल हो गया बापू! वैसे इसमें कसरत होती है और फिर मामा मामी की सेहत भी हाथ की चक्की का आटा…

सुनयना—(बात काट कर रोते हुए) वह चांटा दूंगी कि…बड़ा आया है हाथ की चक्की का आटा वाला।

नाथू—तुम बीच में मत बोला करो पिरथी! जाओ अपना काम करो जाकर। काशी! जाओ मां के लिये चाय बना लाओ।

(दोनों जाते हैं। सिसकियां चल रही हैं। नाथूराम पास जाते हैं)

नाथू—सुनो जी! मैंने कहा तुम तो ज़रा ज़रा सी बात पर यूं बिगड़ जाती हो, ज़रा से में बुरा मान बैठती हो। मैं तो खुद नाप तौल कर बात कहता हूँ कि कहीं तुमको बुरा न लग जाय। मैंने कहा…।

सुनयना—(केवल सिसकियां)

नाथू—रानी! अभी भी ठीक वैसी की वैसी ही हो जैसी आज मुद्दत हुई, बरसों पहले जब तुमको बिदा करा के इस घर में पहली बार लाया था। (लम्बी सांस लेकर) तुम जब इस तरह नाराज़ हो जाती हो तो सच मानों मुझे जाने कैसा कैसा लगता है। ज़रा हंसना तो—अंय—ज़रा ऊपर देखो। (सिसकियां) अरे लो। अब मान भी जाओ।

सुनयना—(रूआसे स्वर में) मुझसे कोई न बोले।

(नीचे सड़क पर रिक्शे का हार्न ज़ोर से बज उठता है। काशी पुकारती हुई आती है।)

काशी—मां—मां—मामा आ गये मामा। मगर यह तो बारह घंटे पहले ही पहुंच गये।

नाथू—उन्होंने तो शाम की गाड़ी से आने को लिखा था। तो क्या…

सुनयना—(भर्राई आवाज़ में) कहने को घर भर पढ़ा लिखा है लोगों को एक तार तक तो पढ़ना आया नहीं। पिरथी !

पिरथी—(आते हुए) मामा—आ गये—मामी भी। बड़ा सामान है। लदा पड़ा है। दो आदमी तीन रिक्शे। गज़ब—मामा की सवारी आ गई। (जाता है)

दृश्य दूसरा

नाथू—और क्या कहो कि (सड़क पर पहुंच कर) वक्त पर दादाजी भी नहीं। अरे मंशाराम भई अच्छे तो रहे ? तार से तो शाम को अवाती थी।

मंशाराम—नमस्कार—भाई साहब—लो…करलो क्या करते हो !! यानी कि तार में…क्या कहा ? (सामान गिरता है, रिक्शे वाले से) अरे ऐ मिस्टर ! ज़रा हाथ संभाल कर के। कीमती और नाज़ुक टाइप का सामान है और आप हैं कि ऐसे जुटे हैं जैसे किसी मालगाड़ी के डिब्बे से कोयले के बोरे उतार रहे हों। पैसे लगे हैं पैसे ! गाढ़ी कमाई के ! लो करलो क्या करते हो।

रानी—(बड़े प्यार से) अरे बेटा पिरथी। अय—हय—काशी बेटी इधर आना तो—अय—हय अब तो खूब बड़े हो गये हो। (कुछ गिरता है) अय हय ! मेरा सिंगारदान, नाश कर दिया। (मंशाराम से) कोई देखता भी तो नहीं—क्या देख रहे हो मुंह बाये ?

नाथू—अरे भाई ज़रा सम्भाल के उतारो ऐसी भी क्या जल्दी कि सामान का भुरकुस निकल जाये। तुम ऊपर चलो भाभी। काशी ले चलो न।

काशी—आओ मामी ऊपर चलो सामान आता रहेगा।

मंशा—यह रिक्शे वाले तो लाट साहब हैं। लो करलो क्या करते हो। न किसी की सुनना, उलटे सीधे किराये, रिक्शा चले तो हर मिनट यह कोशिश की उलट दें किसी न किसी तरह और सामान के तो, जानी दुश्मन। लो करलो क्या करते हो, भाई साहब ज़रा संभाल के।

(सामान उतार उतार कर ढेर लगाया जा रहा है)

रिक्शावाला—सामान है कि पूरा बैंगन का बैंगन। ऐसा कभी नहीं देखा।

रानी—अय—हय !! खड़े खड़े क्या करते हो, ज़रा कोई हाथ भी तो नहीं लगा देता ? मेरा पान-दान, सिंगार-दान, टिफिन, फलों की टोकरी ? खिलौनों की पोटली, जूतों का बक्सा मैंने कहा ए-ए-ए-वह थरमस संभालो न !! (सांस रोक कर) अभी कचूमर निकला था। कहते हैं कोई ज़रा संभाल के उतरवा नहीं लेता। पांव जमीन पर पड़ा नहीं कि बस जुट गये गप्पें छांटने। अय हय ! अब मैं क्या करूं ?

पिरथी—क्या करूं ? मामी ऊपर चलो।

मंशाराम—(खुला मुंह बन्द करके दर्शकों की ओर) लो करलो क्या करते हो। यानी हम खड़े गप्पें छांट रहे हैं ! सामान न हुआ मुसीबतेजान हो गया। रात भर आंख न लग पाई और अब भी चैन नहीं। बात की जायगी तो की ही जायेगी। चाहे बात कुछ हो या नहीं—किसी की सुनी न जायगी। लो करलो··· (सामान गिरता है) अरे रिक्शेवाले ! क्या सारे सामान को ही बरबाद करके दम लोगे भले-मानुसो !!

नाथू—पिरथी, काशी, मामा-मामी को ऊपर ले चलो। मैं ऊपर लिवा लाऊंगा सामान।

मामी—तुम तो बहुत बड़े हो गये हो पिरथी, अय-हय।

मंशाराम—लो करलो क्या करते हो।

पिरथी—बस ऊपर चले चलो मामा।

काशा—हां-हां-मामा। (जाते हैं)

रिक्शेवाला—पैसे मिल जायें बाबू साहब।

नाथू—हां! हां!! मिलते हैं पर यह सामान ऊपर जायेगा या नहीं?

रिक्शेवाला—ऊपर जायेगा या नहीं हमसे मतलब नहीं, हमें तो पैसे दिलवाइये। सामान चाहें ले जायें ऊपर या यहीं पड़ा रहने दें नीचे।

नाथू—तो—अरे—मैंने कहा यह कौन ले जायेगा ऊपर?

रिक्शेवाला—मैं क्या जानूं। सामान ढोने का हमारा रूल नहीं है। हम रिक्शा चलाते हैं; कुली नहीं हैं। पैसे दीजिये पैसे (हार्न बजा कर) देर हो रही है।

नाथू—तो क्या मैं ले जाऊं इसको।

रिक्शेवाला—हर्ज़ तो कुछ नहीं पर पैसे वाले हैं, कोई और मजूर कर लीजिये, जो जी में आये कीजिये पर मेरा टाइम न खराब कीजिये। (भोंपू बजाता है) जल्दी कीजिये न—पैसे!

नाथू—(मिन्नत करता हुआ) अरे भाई रात-बिरात होती तो मैं ही सामान लेता जाता पर इस समय सबेरा है सारे आदमी देख रहे हैं। अब मैं कैसे यह सामान उनके सामने उठाऊं? (खांस कर) वैसे अपना काम है अपना काम सबको करना चाहिये।

रिक्शेवाला—(बीड़ी की दम लगा कर) तो कीजिये न! लेकिन अगर मुझे करना होगा यह 'आपका अपना काम' तो रुपिया 'एक' लगेगा।

नाथू—(बिगड़ कर) एक रुपया!! नहीं। मैं खुद उठा के ले जाऊंगा। क्या समझ रखा है?

रिक्शेवाला—(हंसता है) मगर दिन निकला हुआ है। लोग देख रहे हैं। बाबू! क्या कहेंगे लोग कि लालाजी सामान ढो रहे हैं। सोच लीजिये ? (भोंपू बजाता है) एक ही रुपये की तो बात है।

काशी—(ऊपर से पुकारती हुई) बापू! आओ न !! भैया देखो जाकर ! नीचे।

पिरथी—(ऊपर से ही) बापू ! मैं आऊं क्या ?

नाथू—(जल्दी जल्दी) भइया रिक्शेवाले ! यूं तो न जाने कितना श्रमदान में कर चुका हूं पर अब तो ऊपर चढ़ा दे तू ही सामान। रुपिया ले ले अभी। ऊपर जाकर कुछ न कहना। मुझे मज़दूरी मंज़ूर है। काम का कुछ डर नहीं—मगर इस वक्त तो इज़्ज़त का सवाल है !! इज़्ज़त का !!

(रिक्शेवाला हंसता है)

—:❀:o:❀:—

नमक मिर्च

—:o:❉:o:❉:o:—

समय : सुबह के साढ़े नौ !

स्थान : काशी बाई का कमरा

दृष्ट निर्देश :—

कमरा साधारण सजा हुआ है। एक ओर चारपाई या तख्त। दो एक मोढ़े या कुर्सी। सामान जैसे सिलाई बुनाई, कपड़े तथा किताबें आदि इधर उधर बिखरी हुई हैं। सामने चटाई बिछी है जहां सुनयना, उमा तथा उमा की मां आकर बैठती हैं। स्टेज के पीछे की ओर एक दरवाज़ा, यदि सम्भव हो तो रहे और उसी से सुनयना तथा पिरथी की 'एन्ट्री' हो।

पात्र :—

सुनयना
काशीबाई
पिरथी
नाथूराम
दादाजी
पंडितानी (पड़ोसिन)
तथा
उमा ।

—❃o❃—

नमक मिर्च

—:*:०:*:—

(काशी बाई गुनगुनाती हुई कालेज जाने की तैयारी कर रही हैं। कभी एक किताब उठाती हैं तो दूसरी पटकती हैं। कापियां तितर बितर, उनमें छांट छांटकर निकालती हैं, वगैरह)

काशी—(स्वगत) यह हिस्ट्री की किताब तो रही ही जाती है, और नोटबुक भी। अरे, ऐसा न करो भाई, नहीं तो मिस मलिक जान ले लेंगी, कुमारी काशी !! (चलने के लिये तैयार हो जाती है (क़लम देखती है) अरे ! कलम में स्याही तो भर लो मिस साहब ! (ढूंढ़ती हैं) मगर है कहां कम्बख्त स्याही ? (फिर वही तलाश ज़ारी हो जाती है)

सुनयना—(दूसरे कमरे से पुकार कर) काशी ! धोबी का हिसाब और दूध के रुपये जोड़ लिये हैं या नहीं ? कितनी बार मैं तुझसे कह चुकी हूँ।

काशी—(ऊंची आवाज़ में) मां—एक नहीं, हज़ार बार मैंने भी कह दिया है कि जब मैं कालेज की तैयारी कर रही होऊं, कृपा करके मेरे पीछे कोई न पड़े। (व्यस्त होकर) इस समय मेरे पास ज़रा भी टाइम नहीं है इन झमेलों के लिए, हां !!

पिरथी—(आते हुए) जब कि मैं भी एक नहीं हज़ार बार मना कर चुका हूं तो भी तुम, मेरी फाउन्टेन पेन की स्याही इधर उधर क्यों करती रहती हो, काशी !! यह तुम्हारी बुरी आदत कभी छूटेगी या नहीं ?

काशी—(बिगड़ कर) तो क्या मैंने उसको चाट डाला ? लीजिये

लीजिये उठा ले जाइये अपनी स्याही, उसकी अब मुझे कोई ज़रूरत नहीं है।

पिरथी—एक तो चोरी और ऊपर से सीना ज़ोरी (ताव में आकर) आखिर समझ क्या रक्खा है मुझे? घर का टहलुआ !! जो लगीं रोआब उंडेलने।

काशी—(धीरे धीरे शब्दों को जमा जमा कर) देखो भइया—आवाज़ ज्यादा ऊपर उठाने की ज़रूरत नहीं !! नहीं तो फिर मुझे भी वैसा ही करना पड़ेगा और फिर लाचारी की होड़ में पल्ला मेरा ही भारी होगा।

(हाथ में एक लौकी लेकर उसे छीलती हुई सुनयना आती है)

सुनयना—(झांक कर) मैंने कहा कि क्या कहा तूने? धोबी का हिसाब और दूध के रुपये जुड़ गये या नहीं? यह बता मुझे।

काशी—अभी नहीं और न मुझे इस समय टाइम ही है। रोज़ ऐसे ही उलझ कर मुझे देर हो जाती है।

सुनयना—(अवाक्) अरे वाह री लड़की! यानी हर तरह से ख़ामी मुझी में है। दिन मरो तो कम और रात मरो तो। यानी इतनी बड़ी हुई और तुझको घर के काम से कोई मतलब ही नहीं है? वाह री कालेज की पढ़ाई क्या यही सिखाया जाता है वहां—कि मां से मुंह जोरी करे—बोल?

पिरथी—(व्यंग से) क्या सीखती है बेचारी? मां अपनी सुपुत्री को प्रवीण समझो। 'बने काम' को 'अनबना' करते रहना, और नहीं तो, घर के दूसरे बड़ों की इज्ज़त कहिये, तो चुटकी बजाते धूल में मिला दें। यह सभी काम तो बेचारी ने उठा रक्खे हैं,—केवल अपने ऊपर—और तुम पूछती हो—

काशी—(बात काट कर) तो भइया ही क्यों नहीं धोबी का हिसाब और दूध के रुपये जोड़ देते। बी० एस० सी० में मैथ्स ले रखी है। अरे! कभी तो काम आये!!

सुनयना—(आंखें ऊपर को चढ़ा कर आश्चर्य से) यानी अब घर का बड़ा लड़का काम करेगा और साहबज़ादी देंगी उपदेश ! छोटे मुंह और इतनी बड़ी बात ! पट्ट से कह दी !

पिरथी—(इतमिनान से) अब देख लो मां, फिर न कहना।

सुनयना—काशी ! ऐसी ऐंड़ी बैंड़ी बातें करेगी तो मुझसे बुरा न होगा।

पिरथी—(पास जाकर) हां। सुन लीजिये कान खोल कर।

काशी—(जल्दी जल्दी) यानी कौन सा उपदेश दिया है मैंने ? मुझे कालेज के लिये देर हो रही है, और ऐसे में, भइया ने हाथ डुला कर ज़रा सा काम कर ही दिया तो क्या उससे कुछ भूचाल आने का डर है ? या कि घर का काम करना कोई छूत की संक्रामक बीमारी है, जो लगी सो बस लगी ही लगी ?

पिरथी—(तेज़ी से) यह लेक्चर बन्द करो। कौन होती हो तुम यह नेक सलाह देने वाली ?

काशी—तुम्हारी बहिन। हिस्ट्री उठा के देखो तो पता चलेगा कि भाइयों ने बहिनों के लिये क्या क्या नहीं किया ? शाहंशाह हुमायूं……।

पिरथी—(इतमीनान से) जी हां ! जी हां। 'हिस्ट्री' और ग़ौर से पढ़िये और फिर बताइये कि हुमायूं ने किस बहिन के लिये और कब 'धोबी का हिसाब' और 'दूध के पैसों' को जोड़ा था ?

सुनयना—मैं तो बस यह जानना चाहती हूँ कि सिवा बाल की खाल निकालने के और भी तुम लोगों ने कुछ सीखा है स्कूल कालेज में ? (दृढ़ता से) मैंने जो कहा है, उसको पहले चुपचाप करना होगा तुझे—काशी ! बस !

काशी—(रोनी आवाज़ में) बस पीछे पड़ गईं मेरे (किताबें फेंकते हुए) लो नहीं जाऊंगी आज कालेज। आज सिवा 'धोबी के हिसाब' और 'दूध के दाम' जोड़ने के दूसरा काम नहीं होगा। जी ठंडा हो गया भाई साहब !!

पिरथी—देखो काशी ! फालतू बातें मुझसे नहीं चलेंगी। मैं हुमायूं नहीं हूं। और न तुम मेरी 'मुंह बोली' बहिन ! यहां नहीं दाल गलने की, सगे भाई से पाला पड़ा है। (मुंह चिढ़ा कर) हिस्ट्री में लिखा है बड़ी विकट पढ़ाई है—यह भी कहीं पढ़ा है कि बड़े भाई की फाउन्टेनपेन की स्याही रोज़ ही ग़ायब कर दिया करो ? (काशी रोती हुई चली जाती है)

(नीचे से किसी के आने की आवाज़ आती है। उमा और उनकी मां कष्ट से ज़ीना चढ़ कर आती हैं)

सुनयना—(आगे बढ़ कर) अरे कौन ! उमा की मां ! आज तो बहुत दिनों पर दिखीं। अच्छी तो हो ! (पुकार कर) काशी ! अरे अपनी चाची को कुछ बैठने को दे दे। इधर आओ इधर बहिन बड़े दिनों पर आईं हो, थक गई होगी क्यों ?

पड़ोसिन—(हांफते हुए) हां भाई सच्ची—बड़े ऊंचे पर है। उमा !

उमा—(स्वर मिला कर) हां ! मां !

पड़ोसिन—बेटी कित्ते ऊंचे पर है मकान ?

उमा—हां—मां। (एक उंगली गाल पर रखते हुए सुनयना से) मां का तो बुरा हाल हो गया, चाची। चढ़ते-चढ़ते, चढ़ते-चढ़ते—मगर हैं पक्की। कहा कि तेरी चाची को बहुत दिनों से नहीं देखा है उमा, चलो चलें।

पड़ोसिन—उमा !

उमा—हां-मां।

पड़ोसिन—(ज़रा धीरे से मगर इशारा आंखों से साफ़ ही साफ़ दिखता है) बेटी मेरा दर्द ?

उमा—(उत्साह से) अरे हां चाची। मां के पैरों में, जोड़ों में बड़ा दरद होता है। न दिन चैन और न रात, पर बोलीं कि 'नहीं' तेरी चाची से तो मिलना ही होगा। वैसे 'भंवर लाल जी' के यहां से बुलावा आया था।

सुनयना—(लौकी छीलना बन्द करके) अरे काहे का, वही मुन्नी के तिलक का ?

पड़ोसिन—(साड़ी सर पर खींच कर) हां, वही मुन्नी के तिलक का ! सामान मैंने देखा तो नहीं, हां सुना है कि थाल की सुपारियां सब दिखाने की ही हैं (आंखें चमका कर सर पास ले जाकर) यूं हैं जहाज़ी एक दम सड़ी । उमा !

उमा—हां-मां ।

पड़ोसिन—क्यों ? हैं न सब सड़ी ?

उमा—(सुनयना से) चाची ! एक दम सड़ी । रुपये को सवा दो सेर में अच्छी तो मिलने से रहीं ? नाश्ते के लिये लड्डू तो बिल्कुल सड़े मगद के थे । सड़े—एक चींटे की टांग तो मेरे लड्डू में निकली । बची—नहीं तो (खांस कर) खा गई होती ।

पड़ोसिन—और गहने, उमा !

उमा—(सुनयना से) हां-मां, गहनों में चार आने भर भी सोना नहीं निकलने का । हद से हद साढ़े तीन का होगा ।

सुनयना—(लौकी छीलते हुए) अरे भाई यह कहो कि किसी तरह से छुट्टी तो पा जायेंगे । (छीलना रोक कर) तुमसे क्या छुपा है उमा की मां, गृहस्थी में हज़ार मुसीबतें हैं । दम मारने को फुर-सत नहीं । बच्चे सयाने हुए ।

पड़ोसिन—बेटी उमा !

उमा—हां—मां ।

पड़ोसिन—तुम्हारी चाची कहती हैं (आंखें चमका के) बच्चे सयाने हुए (सुनयना से) हां बहिन, तब तो परेशानी होगी ही !

उमा—हां—मां, सो तो है ही । (उंगली ठोढ़ी पर टिकाती हुई) काशी तो सयानी हुई फिर परेशानी तो होगी ही ।

पड़ोसिन—(इतमिनान से) मैं यही कहने आई थी, काशी की मां ।

(खांस कर) कहीं बातचीत चली या नहीं। सयानी लड़की तो आंख में ऐसी लगती है जैसे जेठ बैसाख की भरी दुपहरी का सूरज। क्यों उमा ?

उमा—हां—मां।

पड़ोसन—अरे अपने घी वाले रस्ते में नायकों की लड़की……।

उमा—वही अपनी सोना—न मां (उत्साह से) हां देखो तो, तेरह की इस साल पूरी होवेगी। अरे क्या पूछती हो चाची! ज़मीन आसमान एक किये दे रहे हैं। मुनीम कहीं भेजा गया तो खुद बिचारे दिल्ली, आगरा, राजकोट, और मदरास के चक्कर काट रहे हैं कि कहीं तो जोग लगे।

सुनयना—(लौकी धीरे धीरे छीलते हुए) मैं सोचती हूं कि काशी को कुछ पढ़ा देती तो अच्छा बर मिल जाता।

पड़ोसिन—(उपहास से) अरे यह भी खूब कहा। (हंसना रोक कर तत्परता से) मैं तो कहती हूं कि पहले हाथ पीले करो। अपने घर जाये, फिर वह लोग चाहें तो एम० ए०, बी० ए० पढ़ायें।

सुनयना—(लौकी छीलना रोक कर एक ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए) यह भी ठीक कहती हो तुम उमा की मां। (छीलना शुरू करते) अब तो यह काम होना ही चाहिये।

(नाथूराम और दादाजी आते हैं)

दादा—(हाथ-उंगलियां वगैरह हिलाते डुलाते) नाथूराम ! मैंने तो तुम्हें सुबह से लेकर शाम तक आगाह करने का ठेका ही ले लिया है, पर आप हैं कि समझते ही नहीं। और तो और, कौन जाने तुमको शायद मेरी बातें भी अब बुरी लगती हों।

नाथूराम—(हँस कर टालते हुए) अरे वाह दादाजी, यह आपने

एक ही कही। मैं तो आपको पूज्य पिताजी के स्थान पर समझता हूं।

दादा—(साधारण भाव से) भई हम तो पुराने आदमी हैं। ज़रा सा सर में दर्द हुआ चट डाक्टर के पास नहीं चल देते, खांसी आई तो टी० बी० का मरीज़ अपने आपको समझने नहीं लगते, अभी भी तीसरे दर्ज़े में चलते हैं और होटल में चाय तक नहीं पीते (एकाएक जोर से) मगर……।

नाथूराम—(शीशा देखते हुए सचेत होकर) मगर…! (पास आकर) दादाजी समझा नहीं।

दादा—क्यों समझोगे मिस्टर !! मगर यह कि हम एक एक बात तुली हुई कहना जानते हैं। तुली हुई !! (हंसता है)

नाथूराम—(हाथ पर हाथ धर कर आज़िजी से) तो दादाजी, मैं भी आपकी राय से अलग नहीं। सिर्फ इतना सोचता था कि काशी भी और लड़कियों की तरह बी० ए० कर लेती तो ठीक रहता।

दादा—(बमक कर) फिर वही, अरे हज़रत बी० ए० न हुआ मानो कोई तीरथ हो गया, जो करना ही है ! बिना किये धरती आसमान में कहीं जगह न मिलेगी। यह भी कोई दलील है ?

सुनयना—(ज़रा सा घूंघट सरका कर) मुझे भी तो कुछ पता चले कि यह आखिर है क्या सब ? कहां की दलीलें कहां मिलाई जा रही हैं !

नाथूराम—(सुनयना से) बात यह है, कि दादाजी का कहना है कि काशी की शादी हो जानी चाहिये। इसी साल। और मैं कहता हूं कि बिना बी० ए० पास किये नहीं।

सुनयना—(सोचती हुई) मैं भी ठीक से तय नहीं कर पा रही हूं। मेरे सामने भी यही सवाल है। (तय करके) पर मैं समझती हूं कि दादाजी की राय मुनासिब ही है।

पड़ोसिन—उमा !

उमा—हां-मां।

पड़ोसिन—(वैसे ही) दादाजी की राय बहुत मुनासिब है।

उमा—हां-मां ! भला शादी और मौत कभी इस लिये रुकी हैं कि कोई बी० ए० पास न हुआ। वह तो जब आयेगी तब आयेगी ही। (आंखें चमका कर) और क्या !!

नाथूराम—(सोचता हुआ) मगर काशी से तो पूछ देखो ! आखिर उससे भी तो राय ले लेना ठीक होगा।

दादा—(चिहुंक कर) तो अब लड़की से उसके ब्याह की राय लेनी होगी ! और आप समझते हैं कि वह 'हां' या 'ना' कहेगी ही ? और उसी पर हम लोगों को अमल भी करना होगा ?

पिरथी—(बनावटी तत्परता से) जी नहीं, दादाजी ! आप तो बस तय करा दीजिये, चट मंगनी पट ब्याह ! भला क्या ज़रूरत कि पूछ तांछ की जाय (दर्शकों की ओर) शादी के लिये दुल्हिन-दूल्हा से पूछ तांछ कैसी ?

दादा—(समझाते हुए मगर ज़ोर से) नाथूराम ! जो काम करना है उसे कर डालना ही उचित है। कल पर उठा रखना ठीक नहीं।

पिरथी—(चिहुंक कर) अरे बाप रे, लो बापू क्या बिल्कुल ठीक ही कर आये हैं आप लोग ? (बाहर की ओर जाते हुए) हां-हां ? दूल्हे साहब नीचे सड़क पर खड़े हैं क्या—लिवाते लाते न यहीं ?

पड़ोसिन—(उत्सुकता से) बेटा उमा !

उमा—(वैसे ही) हां-मां।

पड़ोसिन—यह क्या बात है ?

उमा—(सुनयना से) चाची ! मैंने कहा कि काशी कहां है ?

पिरथी—(ड्रेमेटिक अन्दाज़ से) सखियां मंडप में लाने को सजा रही हैं काशी को। (हंसता है)

दादा—(डांट कर) तुम लोग इस तरह बीचमें बात काट कर नाहक सर न खाया करो ! हां ! पिरथी !!

नाथूराम—(चिन्तित स्वर में) दादाजी अपने तो गले से बात उतरती नहीं। साल दो साल की बात ही तो और है।

सुनयना—(लौकी दो टुकड़े में झटके से काट कर) मगर मैंने खूब सोच कर देख लिया, आगा पीछा करना ठीक नहीं। आखिर हमारी भी शादी हुई थी !

नाथूराम—(तेज़ होकर) यह तो न सोचा होगा कि हमारी शादी और इस शादी में बीस लम्बे वर्षों की दूरी है। जो कम नहीं होती। एक ज़माना हो गया ! ज़माना !!

सुनयना—(तेज़ी से) अकेले तय करली होती यह दूरी, तो कम से कम, बी० ए० पास बीबी तो मिलती। (चाकू हवा में हिलाते हुए) मगर लालाजी ! वह नाकों चने चबाने पड़ते कि सिट्टी भूल जाती ! यह नहीं कि मन चाहा 'मनवा लिया' 'समझा लिया' और जो चाहा वह 'करवा लिया'।

नाथूराम—(और तेज होकर) क्यों नाहक बात का बतंगड़ बना रही हो पिरथी की मां !! अब क्यों सबके सामने मुंह खुलवाना चाहती हो (कमीज़ उतारता हुआ) क्या कसर उठा रक्खी है तुमने ! यही खयाल आता है कि भगवान ! मुझे बेज़ुबान ही बनाया होता।

पड़ोसिन—(उत्साह से दबी आवाज़ में) उमा !

उमा—(वैसे ही) हां-मां !

पड़ोसिन—(वैसे ही दबी आवाज़ में) बेटी !! झगड़ा ! सब ध्यान देकर सुनना।

उमा—(आनन्द से वैसे ही) बड़ा मज़ा आ रहा है। एक एक बात गांठ बांध लूंगी।

दादा—(अपनी पगड़ी उतार कर फिर पहनते हुए) अयं—यानी कि महाभारत के कई अध्याय को आप लोग पीछे छोड़ काफी आगे पहुंच गये, क्यों ? अच्छी सलाह किसी को मंज़ूर न होगी यह तो मुझे पता ही था। बुज़ुर्ग बिचारे सिखाते ही थे कि बेटा ! भूल कर किसी को नेक सलाह न देना। मगर…।

नाथूराम—(बात काट कर शिकायतन) मुझसे नहीं, दादाजी, इनसे कहिये कि किसी की बात कभी तो, नाहक गुस्सा किये बिना ठीक से सुना करें ?

दादा—किससे कहें और किससे नहीं। मुझे क्या करना है, जो मन में आवे तुम लोग वही करो।

सुनयना—(लौकी और काटती है) मनचाही करने में तो घर ही बरबाद होगा। यही दीखता है मुझे।

दादा—(चश्मा पोंछते हुए) तो हो—क्या बुरा है ? जल्दी ही हो, जिसमें और कुछ होने को रह न जाय।

नाथूराम—(परेशानी के स्वर में) यह भी आपने बिचारा कि अगर अपनी लड़की पढ़ी लिखी न हुई तो अच्छा वर कहां मिलेगा ?

दादा—(दर्शकों की ओर) और सुनिये ! जनाब क्या फ़र्माते हैं ! यानी कि इस देश में और तो कमियां खैर थीं हीं—अब समझदारों की भी कमी आ गई दीखती है। वाह रे ज़माना !

पिरथी—(हाथ उठा कर) सर मैं कहूं। बिल्कुल कमी नहीं है समझदारों की। समझ को आप एक तरह की बैटरी समझें, जो कि खत्म हो जाने के बाद फिर उजाला नहीं देती। यानी कि दादाजी समझदार तो हैं। (समझाते हुए) मगर दादाजी ! उनकी बैटरी फैल हो गई है।

नाथूराम—(झिड़क कर) पिरथी तुम बीच में बोलने की आदत कभी छोड़ोगे या नहीं ? यह सवाल पूछते पूछते अब मैं घबड़ा गया हूं।

दादा—(फैसला करते हुए) मैं समझता हूँ कि खुद काशी से ही यह पूछ लो। बस। कहाँ हैं काशी ?

पिरथी—(क़मीज से गर्द झाड़ते हुए) गुस्सा होकर धोबी का हिसाब और दूध वाले के दाम जोड़ रही है।

दादा—(चश्मा और खिसका कर) क्या मतलब ! यानी गुस्से होकर ?

पिरथी—मैं ठीक पोज़ीशन बता रहा हूं—in a nut shell—यूं क़िस्सा लम्बा है।

पड़ोसिन—(परेशानी से) उमा !

उमा—हां-मां !

पड़ोसिन—(वैसे ही) बेटी ! काशी धोबी का हिसाब और दूध वाले के दाम जोड़ रही है।

उमा—(उत्सुकता से और ग़ुस्सा होकर)। हे भगवान !! यह क्या होने वाला है ?

पड़ोसिन—(उकसाते हुए) सुनयना, अपनी उमा तो तेरवीं पार कर चौदवीं में गई कि मैंने तुम्हारे जेठजी से कहा कि लड़की के हाथ पीले होंगे ! इसी साल ! और मैं तो करके ही रही। हां !!

सुनयना—(उदासीन सी) हां यही ठीक किया बहिन। यही होना चाहिये, बेटी पराया धन होती है।

पिरथी—(शरारत से) और यह भी लगे हाथों फिर बता दीजिये उससे कै महीने बाद जीजाजी लापता हो गये ? या मैं ही कह दूं ? कुछ चिट्ठी विट्ठी आई कि नहीं ?

(उमा रोने लगती है)

पड़ोसिन—(नाराज़ होकर) उमा !

उमा—(रुआसी सी) हां-मां।

पड़ोसिन—(ऊंची आवाज़ में) इन लड़कों के कुछ लिहाज नहीं रहा है।

उमा—(रोती है) हाय हाय में क्या करूं ! मुझे ऐसी वैसो बातें सब कहते हैं।

सुनयना—(चेतावनी के स्वर में) पिरथी ! तू इस तरह की बातें क्यों करता है कि किसी का दिल दुखे। (उमा से) चुप हो जा बेटी।

(मगर उमा रोती है)

नाथूराम—(समझाते हुए) चुप हो जाओ उमा। वह ज़रूर आ जायेगा। इसमें बात ही क्या है ?

पड़ोसिन (नाराज़ी के स्वर में) हमें क्या पड़ी है जो किसी की बातों में पड़ं। भला जो मुंह में आया उसे बक देना भी कहां की भलमनसाहत है ? चल बेटी चलें।

नाथूराम—(रोकते हुए) ज़रा मुंह तो जुठलाती जाओ न !! उमा की मां ! बच्चे हैं।

पड़ोसिन (बिगड़ कर) यह बच्चे हैं। ना बाबा, अब यहां नहीं रूकेंगे। उमा !

उमा– (रोते हुए) हां—मां।

पड़ोसिन चलो चलें बेटी।

उमा—(रोते हुए) मुझे सब ऐसे ही कहते हैं।

नाथूराम—(व्यग्रता से) तो मैं कहता हूं कि भाई ! (सुनयना से)

सुनयना !! इनको रोको। (उन लोगों से, फिर दादाजी से) मैंने कहा दादाजी ! यह पिरथी बहुत नालायक है।

(उमा और उसकी मां जाती हैं)

सुनयना—यह ठीक नहीं हुआ। घर आये मेहमान का इस तरह से अनादर ! कैसे चांडाल लड़के हैं।

दादा—हुआ क्या था ?

नाथूराम—क्या बतायें।

पिरथी—(शरारत से) यही कि हमारे जीजा, यानी उमा जी के पति बेचारे थे पढ़े लिखे पुरुष, और हमारी उमा जीजी चौथी तक तालीम याफ्ता। शादी तो हुई पर बाद में ठीक सात महीने तीन दिन पर वह इनके 'घर चोट कर गये'; यानी छोड़ गये। ख़बर ही न ली मेरे यार ने ! (लम्बी सांस लेकर) बात पांच साल पुरानी हो चुकी है।

नाथूराम—तुम चुप रहो।

सुनयना—फिर न कहना कभी यह बात।

(दादाजी कुछ सोचते हुए खड़े हैं)

काशी—(अन्दर आते हुए) यह धोबी का हिसाब हुआ आठ रुपये दस आने और दूध का तेईस रुपये छै आने--भैया की पेंट उसने खो दी।

पिरथी—(चिहुंक कर) कौन !! मेरी सिल्क वाली ! नई !

काशी—हां वही।

पिरथी—(बिगड़ता हुआ) यानी यह भी कोई बात है, कि मेरे कपड़े ही सब चुरवा दिये जायें, ऐसे धोबी को निकाल देना चाहिये। उसके रुपये काट लेना चाहिये, एक पैसा नहीं दिया जायेगा।

सुनयना—(रोकते हुए) क्यों सर पर आसमान उठा लिया है ?

पिरथी—(वैसे ही) क्यों ? इसलिये कि सब मिल कर मेरा मज़ाक बनायें ! अभी जाता हूं उसको ठीक करने।

(चिल्लाता हुआ जाता है)

नाथूराम—दादादी, तो फिर क्या सलाह है आपकी ! इतना चुप क्यों हैं ?

दाद—(वैसे ही सोचता हुआ) ऐसे ही कुछ सोचने लगा था। अच्छा फिर आगे कभी इसकी बात करेंगे (काशी बाई से) काशी ! कहां गई थी इतनी देर से ?

काशी—(मुंह फुलाये हुए) यहीं थी दादाजी !

दादा—(ऊंचे स्वर में चश्मा ठीक करते हुए) यहीं थीं !! यहीं थीं, क्यों थी यहीं ? तेरा कालेज तो आज खुला हैं न ? फिर यहां क्यों थी ? जवाब दे !!

काशी—(वैसे ही) धोबी का हिसाब, दूध वाले के रुपये···

दादा—(ऊंचे स्वर में) क्या कहा ? इन फालतू बातों में पढ़ाई का नुक़सान ! किसने कहा था ? (इधर उधर देखते हुए) नाथूराम !! बहू !! यह क्या है। जमाने को क्या हो गया है !! समझदार रह ही नहीं गये हैं। मैं यह नहीं चलने दूंगा समझे मिस्टर !! पढ़ाई में नुक़सान ! कभी नहीं...(सुनयना नाथूराम एक दूसरे की ओर देखते हैं। (नाथूराम मुस्कराता है काशी बाई अपनी किताबें उठाती हैं)

(पटाक्षेप)

—:*:०:*:—

जब नींद नहीं आती

समय : रात्रि का प्रायः अंतिम प्रहर

स्थान : नाथूराम के मकान की खुली छत

दृश्य निर्देश :—

दृश्य में यह आवश्यक है कि छत तथा साथ ही साथ नीचे उतर कर आने तथा किवाड़ खोलने पर आगन्तुकों से बात करने की क्रिया पूर्णतया दर्शकों को दिख सके; क्योंकि इसी पर पूरा कथानक निर्भर है। इसके लिये स्टेज के आधे भाग (बांई ओर) एक खुली छत पर दो चारपाइयां या तख्त दिखाये जांय जिसमें से एक पर नाथूराम करवटें बदलते और दूसरे पर सुनयना, घुटनों पर ठोडी रक्खे, नाराज़, मुंह फुलाये हुए, बैठी दिखें। दर्शकों की ओर चहार दिवारी काफी नीची होना चाहिये जिससे उनको ठीक से दृश्य दिख सके। छत की दाहिनी ओर नीचे की तरफ़ एक बन्द दरवाज़ा दर्शकों की ओर दिखे, जहां तक पहुंचने के लिये पांच छः सीढ़ियां भी हों। छत और स्टेज तक बन पड़े तो, दो खिड़कियां उसके नीचे वाले कमरे का बोध कराती हुई बनाई जा सकती

हैं, या फिर केवल दीवाल से ही काम चलाया जा सकता है। यदि स्थान की कमी न हो तो फिर छत एक ओर न होकर पूरे स्टेज के पिछले भाग पर बनाई जा सकती है। किन्तु याद रखने की बात है कि छोटा स्टेज हो तो छत पर पात्र प्रायः खड़े होकर नहीं, बैठ कर ही संवाद बोलें नहीं तो स्टेज और भी छोटा लगेगा।

पात्र :—

नाथूराम	सुनयना
पिरथी	काशीबाई
दादाजी	अजनवी (पहला)
अजनवी (दूसरा)	अजनवी (तीसरा)

—:❀:o:❀:—

जब नींद नहीं आती

xxxxxxxxxx

(शहनाई, सिनेमा के गाने का घिसा पिटा रिकार्ड यदि हो सके तो ट्रेक बैक वाला दूसरे तरह के बाजों वगैरह की आवाजें ऊपर उभरती हैं। नाथूराम बिस्तरे पर करवटें बदल रहे हैं)

नाथूराम—(बड़बड़ाते हुए) रात बीतने को आई पलक न लग सकी, अभी तक यह धूम धड़ाका खतम होने का नाम नहीं लेता। क्या क्या शौक और हौसले हैं लोगों के, कि दूसरों का ज़रा भी ख्याल नहीं। बस चले तो जान लेलें जान !! (छींकता है) नज़ला उतर आया दीखता है।

सुनयना—(उनींदी आवाज में) न सोने दें और न खुद सोयें। नजला आप पर ही नहीं उतरा, मुझ पर भी असर करेगा। दिन तो दिन, मैं कहती हूं रात को तो ज़रा चैन मिल जाये। दम भर कोई बिना बोले चाले सो भी नहीं सकता! या भगवान !!

नाथूराम—बात दो ही तरह की हो सकती है या तो 'अच्छी' या 'बुरी'। तुम्हें एक भी क़बूल नहीं। यानी कि रानी! (एक सांस लेकर) मेरी आवाज़ से (पड़ोस में एक बच्चा रो उठता है) तुम्हें चिढ़ है चिढ़, क्यों ?

सुनयना—'अच्छी',-'बुरी', 'अच्छी'-'बुरी' चिढ़ ज़रूर है मुझे किसी की बात से नहीं, अपनी तकदीर……

(नीचे किवाड़ खटकता है)

नाथूराम—कौन ? कौन है यह ?

सुनयना—कौन हो सकता है ?

नाथूराम—(बड़बड़ाता हुआ) दीखता भी तो नहीं। बड़ा सबेरा है अभी तो।

सुनयना—दादाजी हो सकते हैं।

नाथूराम—अरे नहीं, उनके पैरों की चाप तो मोड़ से ही पहिचानी जाती है।

(दरवाजा और खटकता है—ज़ोर से)

नाथूराम—आया भाई, आया। ज़रा रुकियेगा। (नीचे जाता है) (दरवाजा खोल कर) कहिये साहब।

अज०—नमस्कार…नमस्ते…हैं…हैं…।

नाथूराम—नमस्ते…नमस्कार…कहिये !

अज०—हैं…हैं…हैं…कहिये अच्छे तो हैं…हैं…हैं…।

नाथूराम—जी हां मैंने कहा कि कहिये, कि हैं…हैं…हैं…।

अज०—सामान उतरवा लेता हूं, ऊपर चला जायेगा।

नाथूराम—(कुछ आश्चर्य से) सामान ऊपर चला जायेगा (सर खुजाता हुआ) यानी कि आप……

अज०—(जल्दी से) में ही लिये चलूंगा, क्या हुआ ! रिक्शेवाले…

नाथूराम—रिक्शा—मगर, मैंने कहा……

अज०—(पैसे गिनते हुऐ) सीधे स्टेशन से आ रहा हूं, हैं–हैं… हैं……(रिक्शे वाले से) क्या दे दूं भाई ? सामान इधर उतार कर लेते आ ना। मगर देखना ज़रा संभाल के।

नाथूराम—(परेशान से) मेरा मतलब यह है कि श्रीमान मेंने… हैं…हैं…हैं……।

अज०—(हंस कर) पहिचाना नहीं, अरे !! मैं, हूं 'नाभाराम' क्या कहते हैं कि (और समझा कर) नभाराम, अंधेरा है बड़ा अंधेरा।

नाथूराम—(पशोपेश में) नाभाराम……अंधेरा तो है ! मगर हैं… यानी कि हैं……हैं……।

अज०—(रिक्शे वाले से) ये रहे पांच आने के पैसे और यह दो पैसे ऊपर बीड़ी ! पी लेना। (नाथूराम से) बड़े पैसे मागते हैं यह रिक्शे वाले। आज कल स्टेशन से बड़ी चौपर से ज़रा ही आगे तक के (हाथ की उंगलियों से बता कर) पांच आने के पैसे !!

(रिक्शेवाला भोपूं बजाता हुआ चला जाता है)

अज०—(सामान समेटते हुए) तो ये सामान मैंने कहा कि ले चलूं न ऊपर। हैं…हैं…रात है…रात अभी मुश्किल से साढ़े चार बजा होगा।

नाथूराम—सामान ! ऊपर…मगर सुनिये तो, यह तक़लीफ ! मैंने कहा कि……

अज०—तक़लीफ ! आपको ? राम, राम, दिन भर के व्याह काज-में लगे हुये से…फिर वो भी मैं ? कोई दूसरा हूं, क्या ?

नाथूराम—(हल्की नाराज़ी से) ब्याह काज के थके ! यानी कि दूसरे तो नहीं हैं ?

अज०—(वेतकल्लुफी के भाव से) अरे है ही कितना? एक हाथ में उठाये लेता हूं, चलिये बढ़िये आगे।

नाथूराम—(ऊब कर) मगर कहां बढ़िये आगे ? मैंने आपको विल्कुल नहीं पहिचाना।

अज०—(चिहुंक कर) मुझे पहिचाना नहीं…! मैं हूं नाभाराम, नभ्भू…हां !

नाथूराम—(बोलता हुआ) नाभाराम, नभ्भू !! मगर आप हैं कौन ?

अज०—(घबड़ा कर) यानी आप मेरे साढ़ू कंठाराम, नहीं हैं ? आपके यहां लड़की की शादी नहीं हो रही है !

नाथूराम—(साथ ही साथ) नहीं—नहीं—नहीं। क्या कहा साढ़ू, हर्गिज़ नहीं !! कंठाराम भी नहीं ! मैं तो नाथूराम हूं। कहिये क्या कहते हैं। और यह सामान !! आख़िर आप क्यों ऊपर चढ़ाये लिये जा रहे हैं ?

(सामान खिसक कर गिर पड़ता है)

अज०—(ज़ोर से) तो यह आपने पहले क्यों नहीं कहा ? यानी कि यह भी कोई इन्सानियत है कि, क्या कहते हैं, रिक्शा भी चला गया। अब ये—ये सामान क़ौन ले जायेगा ? क्या खूब आदमी हैं ! कि नाहक अपने घर में उतार लिया।

नाथूराम—अच्छा ! यानी कि मैंने आपको अपने घर में उतार लिया !! आवाज़ बुलंदी पर ले जाने के पहिले यह तो सोचना था भले आदमी, कि गुस्सा किसे आना चाहिये ? इसको कहते हैं कि उल्टा चोर……

अज०—(बात काट कर के और भी ज़ोर से) क्या कहा 'चोर' 'उल्टा चोर' यह कोई भले आदमी की बाते हैं !! मुझे चोर चोर कहते शर्म नहीं आती ! कोई सुनता भी नहीं !!

नाथूराम—(ज़ोर से) शर्म ! शर्म आती तो है पर आपकी अक्ल के इतना कम होने पर ! यूं लगते तो आप आदमी ही हैं !! रास्ता नापिये ! नहीं तो हज़रत ! बातें आप कुछ ऐसी कर रहें हैं कि मुझे एवरेज इन्सानियत से कहीं नीचे न उतरना पड़े। और……

अज०—(चिल्ला कर) और…आप क्या कहते हैं !! कि मेरा क्या करेंगे ?

सुनयना—(ऊपर से) यह है कौन ? और क्या लड़ाई हो रही है ?

पिरथी—(ऊपर से) कौन है बापू ?

काशी—(ऊपर से ही) यहीं से पूरी इन्क्कायरी करने से तो कुछ होगा नहीं, कुछ डंडा वंडा लेकर जाओ न नीचे ! बापू ने ज़रूर कोई चोर पकड़ा है भइया !

सुनयना—(व्यग्रता से) जल्दी जा नीचे, देख तो सही। आज कल के चोर भी बड़े ज़ालिम होते हैं ! फौरन तमंचा—वमंचा दगा देते हैं, बस !

पिरथी—अरे अभी कचूमर निकालता हूं जा कर।

(नीचे जाता है)

अज०—इस तरह किसी को परेशान करने में आपको शर्म आनी चाहिये शर्म ! क्या समझे !! (बड़बड़ाते हुए) उतारने को तो ! झट से अपने घर पर उतार लिया !! (जाता है)

नाथूराम—क्या कहें साहब ! ठहरा एक सद्‌गृहस्थ ! कुछ ऐसा वैसा होता ! तो आपके वह हाथ देता कि आप देखते फिर !!

पिरथी—(आता हुआ एक लम्बा डंडा लिये हुए) कहां गया ? कहां गया चोर ? बापू, एक ही डंडे में सर फोड़ दूंगा।

नाथूराम—फिर कभी सही, अब तो वह गया। चलो आओ ऊपर। किवाड़ ठीक से बन्द कर लेना। (बड़बड़ाता हुआ ऊपर चढ़ता है) क्या क्या लोगों से पाला पड़ा है ! अक्ल और तमीज़ तो बेंचे घूमते हैं !!

(छींकता है। और बड़बड़ाते हुए ऊपर जाता है)

सुनयना—क्यों कौन था ? क्या सचमुच चोर था क्या ?

नाथूराम—चोर तो क्या, एक बिगड़े हुये थे, जो कि इस घर को अपने

साढ़ू का समझ बैठे थे। शादी में शरीक होने आये थे। क्या बात है, और ज़वान···

सुनयना—(बात काट कर) न हुई मैं, नहीं तो ज़बान खींच लेती।

नाथूराम—(झुंझला कर) तो तुम्हीं चली गईं होतीं। लगे हाथों शौक भी पूरा हो जाता।

पिरथी—एक ही सोंटे में सर खुल गया होता! बुद्धू खिसक गया।

काशी—(बीच में) मगर भइया तुम तो नीचे तभी पहुंचे जब जान लिया कि मैदान साफ है क्यूं? 'सर खुल गया होता!'

पिरथी—काशी मैं कह चुका हूं कि अपने बड़ों से ज़रा तमीज़ से बात करना सीख। अभी सबेरा हुआ नहीं कि···अब देख लो मां !!

सुनयना—सर न खाओ। जाओ जाकर अभी कुछ देर और सो रहो।

(लाउड स्पीकरों की आवाज़ें फिर आती हैं)

नाथूराम—सोना मुहाल कर रखा है लोगों ने। चारों ओर लाउड-स्पीकर ही स्पीकर लगा रखे हैं। न दिन चैन न रात नींद! इतना कोहराम! कि झपकी लेना भी दूभर है।

सुनयना—(झल्ला कर) नींद दूभर है तो आप जाकर उन्हें उखाड़ फेंकिये, छुट्टी मिले। या उठती आवाजों में गांठ बांध दीजिये। जिनके घर में—लड़के लड़की हैं, तो फिर उनके यहां तो बाजे बजेंगे ही। हां नहीं तो!

नाथूराम—(ऊंची आवाज़ में) कोई सोने तक न दे। और मैं गालियां भी न दूं। मैं तो हज़ार बार दूंगा गालियां और जी भर के।

(आवाज़ उभरती हैं)

सुनयना—ज़रूर शौक पूरा करें ! कौन जाने गालियों का गुच्छा ही लाउड स्पीकरों में जा समाये और उनमें से आवाज निकलना बन्द हो जाये।

नाथूराम—(करवटें बदलता है) क्या ज़िन्दगी है, इससे तो भला किसी जंगल में बसना।

[दरवाज़ा खटकता है]

सुनयना—अब यह कौन आया ?

नाथूराम—साढ़ू तो आ चुके ! अब के कोई साले साहब होंगे।

सुनयना—(बिगड़ कर) साले बेचारे को क्या पड़ी है कि बे वक्त किवाड़ खटखटाये ! बहनोई होंगे ! बहनोई !! जाइये आगे बढ़ कर स्वागत कीजिये।

[नीचे जाता है]

नाथूराम—(किवाड़ खोल कर) जी ! आप किसे पूछ रहे हैं ?

अज० २—आप घासीराम जी हैं न ?

नाथूराम—जी नहीं मैं···मैं नाथूराम हूं।

अज० २—मगर घर तो घासी राम का है, आप उनके कौन हैं ?

नाथूराम—घासी राम ! वह मेरे कुछ नहीं हैं। और घर है मेरा ! पुश्तैनी !!

अज० २—मगर इस घर के आगे बंबा लगा है।

नाथूराम—तो क्या करूं इसे उखाड़ फेंकूं ? मैं पूछता हूं कि आप आख़िर चाहते क्या हैं ?

अज० २—(लाचारी से) इस घर के सामने पीपल भी है। पान की दूकान भी है और भैंस भी बंधी है।

नाथूराम—(बिगड़ कर) काले सफेद कुत्ते भी घूम रहे हैं ! आप

भी खड़े हैं। मैं भी खड़ा झख मार रहा हूं। (ज़ोर से) आपका मतलब क्या है?

अज० २—(मायूसी से) तो क्या आपके यहां शादी नहीं है?

नाथूराम—जी नहीं !!

अज० २—मगर बाजे तो बज रहे हैं।

नाथूराम—तो मैं क्या करूं !! अगर किसी दूसरे के यहां बाजे बज रहे हैं!

अज० २—(शक की निगाह से) आप क्या सचमुच घासी राम नहीं हैं?

नाथूराम—(बिगड़ता हुआ) जी नहीं! जी नहीं !!

[ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर लेता है]

सुनयना—कौन था?

नाथूराम—भगवान जाने! किन्हीं घासीराम की शादी में शरीक होने को आये थे···आ उलझे मुझसे। या ईश्वर!

[लाउड स्पीकर की आवाजें फिर उभरती हैं]

सुनयना—(सोचती हुई) मैं कहती हूं, सुनते हो! लगे हाथ काशी के हाथ भी क्यों न पीले कर दिये जांय?

नाथूराम—(खीज कर) अभी बच्ची है बच्ची !! कभी तो सोच समझ कर बात किया करो!

सुनयना—अपनी जानती हूं मैं तो—(बात कह जाती है)

[सुराही गिर कर टूटती है]

काशी—(पुकार कर) मां घड़े में पानी है! पानी !! भइया ने सुराही तोड़ डाली।

पिरथी—पुरानी हो गई थी पुरानी। ऊपर काई लगी थी। ज़रा सा हाथ फिसला और···बस !

काशी—हर काम का सलीका होता है। काई लग गई थी ! हाथ फिसल गया !

पिरथी—(झिड़क कर) मैं कहता हूं चुप रहो काशी !

[दरवाज़ा खटकता है]

नाथूराम—फिर आया कोई। आज की रात है कि बस !

सुनयना—कौन है ! कौन !!

नाथूराम—(गुस्से से जाते हुए) अबकी मुझ से बुरा कोई न होगा। होश पैंतरे कर दूंगा। समझ रखा है कि किसी उठाईगीरे का मकान है। पिरथी आना तो ज़रा। (नीचे जाते हुए) क्या रात में किसी को और कोई काम नहीं है !! बस घर घर के दरवाज़े खटखटाते रहते हैं !! चोर उचक्के कहीं के ! ज़रा मौका मिले तो डाका डाल लें ! डाका !! चोर कहीं के !

[दरवाज़ा ज़ोरों से खोलता है, दादाजी अन्दर आते हैं]

नाथूराम—कौन हो ? तुम !!

दादा—(चश्में से ऊपर देखते हुए) अंय···भांग तो नहीं चढा रखी है नाथूराम ? यह पागलपन है···या हाल की ईजाद कोई नई बीमारी ?

पिरथी—अरे आप हैं दादाजी ! मगर यह पट्टी कैसे चढा रखी है ? बोल न देते तो मेरा हाथ छूट गया होता।

नाथूराम—आप···मगर यह पट्टी चेहरे पर ! मैंने तो पहचाना ही नहीं !

दादा—(हाथ से हटाते हुए) ऊंह···ऊंह···ऊंह···पहिचाना नहीं ! (पिरथी से) यानी कि हाथ छोड़ देते आप ! वाह रे ज़माना !!

कि बड़ों की इज़्ज़त तो दूर···उनको कोई पहिचानना भी नहीं चाहता आज, क्यों ?

नाथूराम—रात भर नींद नहीं आई दादाजी ! (बात बदलते हुए) मगर यह पट्टी तो······

दादा—(बात काट कर) नींद नहीं आई तो चार हर्रे खाकर पानी पी लेते। उत्तर दिशा में एक लोटा पानी कालीजी पर चढ़ा दिया होता और नहीं तो फिर पूर्व की ओर खड़े होकर पांचों उंगलियां माथे पर रख कर सांस ही ले लेते दस बीस। फिर देखते कि नींद आई या नहीं।

नाथूराम—क्या देखते ! दादाजी ! इन शादियों के लाउड स्पीकरों पर इनमें से एक नुस्खा काम न देगा।

काशी—(ऊपर से) दादाजी यह पट्टी कैसी चढ़ा रखी है ? आइये न···चाय ठंडी और शर्बत गर्म हो रहा है।

पिरथी—दादाजी आ रहे हैं। (लोग ऊपर चढ़ते हैं)

दादा—(ठोकर लगती है) नाथूराम ! ये ज़ीना तो ठीक करा लो भले आदमी ! अभी मैं नीचे चला गया होता···

पिरथी—(जल्दी से) एक पट्टी का ख़र्च और बढ जाता···बस। (बात बदल कर) दादाजी यह पट्टी···।

दादा—(बात काट कर) यह पट्टी ! तो ये पट्टी !! यानी कि यह पट्टी !!! (ताव में) सुन लीजिये जनाब ! पट्टी मैंने अपने बांध रखी है···कुछ आपके तो नहीं ! फिर क्यों नाक में दम कर रखा है !

[ऊपर पहुंचते हैं]

सुनयना—क्या हुआ दादाजी ! यह पट्टी कैसी ?

काशी—(बात पूरी करते हुए) सफेद···आप पर खूब खिल रही है दादाजी ! मगर इसकी ऐसी ज़रूरत क्या आन पड़ी ?

दादा—(दर्शकों से) अजब लोगों से पाला पड़ा है…कि कोई दूसरी बात ही नहीं ! बस पट्टी पर अड़े हुए हैं। अब अगर मैं न बताना चाहूं तो ?

पिरथी—तो फिर न बताइये…न बताइये…हम नहीं पूछेंगे, चुप रहेंगे।

काशी—आप को यह कहने का एक और मौका मिलेगा……

पिरथी—क्या ज़माना आ गया है ! लोग बड़ों की इज़्ज़त……

काशी—(पूरा करते हुए) नहीं, नहीं, सुख-दुख की नहीं पूछते !

नाथूराम—मगर हुआ क्या दादाजी !

सुनयना—चोट-वोट है…या…बादी का दर्द है !

काशी—दादाजी यूं ही तफ़रीहन बांधे हैं।

दादा—(बिगड़ कर) तुम ज़रा चुप तो रहो काशी बाई ! क्या ज़माना आ गया है कि……

काशी—(चिढ़ाते हुए) कोई अपने एक पट्टी भी…चैन से बांध नहीं सकता च…च…च……

पिरथी—(जल्दी से) देखो ! मैं कहे देता हूं ! दादाजी नाराज़ हो जायेंगे ! (समझाते हुए) मगर बता भी दीजिये न दादाजी !!

दादा—तो सुनिये, कल शाम मैंने अपनादांत निकलवाया था।

नाथूराम—डेन्टिस्ट से ?

दादा—नहीं।

नाथूराम—फिर ?

दादा—अपने आप, (हाथ अपनी पट्टी पर फेरते हुए) आधा रह गया है।

काशी—(एक सांस में) अरे…बस…तो तम्बाकू का धुआं दे देते, मुलहटी का चूरन खा लेते, केले के छिलके में कपूर रख कर बांध लेते, (समझाते हुए) मैं कहती हूं कि दादाजी ! आप

खुद ही सब गड़बड़ी क्यों कर बैठते हैं (व्यस्तता से) फ़ौरन किसी अच्छे डेन्टिस्ट से मिलिये !!

दादा—(सुनी अनसुनी करते हुए) क्यों मिलूं मैं किसी से? वह-बिचारा कर ही क्या लेगा ?

पिरथी—आप का बचा हुआ आधा काम...यानी कि आपके दांतका बचा भाग...निकाल फेंकेगा।

दादा—(डांट कर) इसका इलाज मैंने खुद कर लिया है (पट्टी पर फिर हाथ फेर कर) मलाई बांधी है, देखते रहना बचा हुआ दांत अपने आप खट से बाहर जा गिरेगा।

काशी—(आश्चर्य से) मलाई से...दादाजी !

पिरथी—(वैसे ही) व्हाट डू यू मीन ? यह नहीं हो सकता। इम्पोसिबिल।

दादा—(हंसते हैं) देखते चलो। देखते चलो।

नाथूराम—दादाजी ! यह मलाई...पट्टी...यानी कि दांत...

सुनयना—तो क्या हुआ! बड़ी बड़ी हिकमतें हैं! तुम जानो भी क्या ?

[दरवाज़ा ज़ोर से खटकता है]

पुकार—(नैपथ्य से आदमी की आवाज़) अरे भाई घासीराम जी! ओ घासीराम !!

नाथूराम—क्या कहा ! फिर...! नहीं ! नहीं !

पुकार—घासीराम जी का मकान यही है ?

नाथूराम—(ज़ोर से) नहीं ! नहीं है यह मकान।

पुकार—मुझ से तो यही कहा था कि सामने पीपल का पेड़ है। और कमज़ोर काला जजमहिल दरवाज़ा।

नाथूराम—(झुंझला कर) तो मैं क्या करूं ? तो क्या...दरवाज़ा तोड़ दूं। (ऊंची आवाज़ में) घर मेरा है ! मेरा !!

पुकार—आपके यहां शादी नहीं है क्या ?

नाथूराम—(बिगड़कर चिल्लाता हुआ) नहीं ! नहीं ! नहीं !!

पिरथी—काशी ! मेरा डंडा लाना ! डंडा । अभी डंडे और सिर की शादी रचाये देता हूं ।

दादा—इज्ज़त से…इज्ज़त से…इज्ज़त ! से पेश आओ ।

नाथूराम—(ज़ोर से—रात भर इसी में बीत गई, अभी समझे लेता हूं (जाता है) किसका मकान समझ रखा है ! किसी उठाईगीरे का !

दादा—इज्ज़त…से पेश आओ ! इज्ज़त…से ।

[बाहर से फिर पुकार—पीपल का पेड़ तो है]

नाथूराम—अरे कोई है…आज तो…ये सब सर फिरे…मेहमान मुझे भी…पागल…।

(सब कोई नीचे एक के बाद एक जाते हैं)

(पटाक्षेप)

—:*:०:*:—

ग्रह दशा

समय : शाम के साढ़े पांच बजे

स्थान : काशी बाई का कमरा

निर्देश :—

काशी बाई के कमरे की सजावट के लिये एक छोटी मेज़ तथा कुर्सी जिस पर पढ़ने की किताबें आदि चुनी हुई हैं, एक रैक जिस पर साड़ियां आदि तथा कुछ तस्वीरें तथा एक 'बैडमिंटन का रैकेट' भी हो। एक तरफ़ छोटा सा तख्त दो तीन छोटे मोढ़े। काशी बाई तथा मोहिंनी मोढ़ों पर ही बैठी हुई दिखें। ज्योतिषी जी आकर तख्त पर बैठेंगे तथा दादाजी भी, नाथूराम पहले खड़े रहेंगे फिर बैठेंगे।

पार्टीशन करके सुनयना के कमरे का कुछ भाग भी सामने दीखना आवश्यक होगा, जहां संभव हो तो उनका पहले गिरना तथा फिर उनके तथा नाथूराम के बीच हो

रही बातचीत भी दिखाई जा सकती है। जब ये बातें कर रहे होंगे, उस समय यह तो यकीनन् डायरेक्टर महोदय मानेंगे ही कि दूसरे कमरे में बैठे हुए लोगों (पुरोहित, दादाजी आदि) पर प्रतिक्रिया दिखाना ही पड़ेगा। उसकी ओर उचित ध्यान देने का सुझाव है।

पात्र :—

नाथूराम
सुनयना
दादाजी
काशीबाई
पिरथी
पुरोहित जी
तथा मोहिनी (काशीबाई की मित्र और उन्हीं की समवयस्का)

—❀०❀—

यह दशा

(काशी बाई और उनकी मित्र आपस में घुल मिल कर बातें करती दिखाई देती हैं)

काशी—(कमर पर हाथ) ह्वाट डू यू मीन ? यानी मुझे यह भी पता नहीं कि इंटर करने के बाद मुझे आगे क्या करना है ?

मोहिनी—ज़रूर पता होगा—पर बिना बताये 'हमें' कैसे मालूम हो ? बताओ न ?

काशी—(एक हाथ से एक चोटी सहलाते हुए) लो ! जान लो ! अभी फिलहाल तो बी०ए० ज्वाइन करना है। आगे की क्या करोगी अभी से जान कर। और तुम ? (शरारत से) लगे हाथों कुड़ुम धुड़ुम हो जाय न !! 'मेरी छोटी सी दुलिहिन आन के'।

[गाती है। दोनों हंसती हैं]

मोहिनी—(शर्मा कर) हिस्ट ! कौन करेगा अभी शादी !! कहीं अपने मन की बात तो नहीं कह रही हो !

काशी—'मैं' ! अभी शादी की बात करूंगी ? बावली ! फिर इंग्लैण्ड कौन जायगा !! आई मीन डोन्ट बी सिली (रैक पर रक्खी हुई किताबें ठीक करती है)

मोहिनी—खैर देखा जायेगा। रिज़ल्ट तो आ जाय…फिर और बात होगी। (एक किताब उठा कर देखती है)

काशी—(बेइख़्त्यारी से) क्या बात होगी…सुनो मोहिनी, इक्ज़ै-मिनेशन दिया गया है तो महज़ इसीलिये कि पास होना है।

मोहिनी—हां ! बात तो सही है…मगर पढ़ाई लिखाई तो जैसी तैसी… आख़िर देवी देवताओं की सेवा में भी तो कोई कसर नहीं उठा रक्खी गई। (हाथ की किताब बन्द)

काशी—सिली। मुझसे ज्यादा तो तुमने भक्ति भावना दिखाई है। गणेशजी से लेकर सनीचर देवता के मन्दिर तक माथा टेक डाला है रानी-महारानी ने ! क्यों है न !! फिर ऐसी हालत में भला फेल कर भी कौन सकता है।

[पिरथी अन्दर जाता हुआ, हाथों से अपनी पैन्ट संभालता हुआ]

पिरथी—(बड़बड़ाता हुआ) घर है कि अच्छा ख़ासा धर्मशाला। कोई भी चीज़ अपनी जगह पर मिलती ही नहीं। (देख कर) ऐ काशी ! मेरा बकिल किधर गया !!

काशी—(मुंह बना कर) ऐ काशी ! का क्या मतलब, यानी 'काशीबाई' कहते क्या आपकी ज़बान सूख जाती है (लड़ाई की तैयारी में) रहा बकिल तो मैं उसका क्या करूंगी…कोई हेयर पिन तो है नहीं कि बालों में लगा लूं।

पिरथी—(और बिगड़ कर) और मैं कहता हूं कि अगर किसी की कारस्तानी है तो बस तुम्हारी। (कुछ नरम पड़ कर) ज़रा ढूंढ दो न जल्दी से, मुझे पिक्चर जाना है। देरी हो रही है, पन्द्रह मिनट और रह गये हैं।

काशी—(लापरवाही से) पन्द्रह मिनट रह गये हैं तो वह भी बीत जायेंगे, मैं कहां से ढूंढूं। देखते नहीं कि इस समय मैं अपनी फ्रेंड से कुछ ज़रूरी बातें कर रही हूं।

पिरथी—(एक बार मोहिनी की ओर देख कर) उस दिन स्लेक्स में ज़रूर लगाये होंगे। बोलो !

काशी—हो सकता है। तो लपक कर मोहिनी के यहां तक चले जाओ, वह स्लेक्स मिल जायगा और उसी में बलिक भी।

पिरथी—(बेहद बिगड़ कर) यानी आपकी राय यह हुई कि इस तरह अपनी पेन्ट पकड़े पकड़े मैं मोहिनी के घर जाऊं।

काशी—(लौट कर) तो आप चाहते क्या हैं, कि मैं आपकी पेन्ट पकड़े पकड़े चलूं !!

पिरथी—(लाचारी से) ज़माने को दाद दूं···या कि सिर्फ इसी घर में किसी को किसी के साथ ज़रा भी सिमपैथी नहीं !! डेढ दो मिनट और हो गये···अब तो ज़रूर मिस हो जायगी पिक्चर।

काशी—(अभिमान से) तो हो जाने दो।

पिरथी—(डांट कर) शट अप ! क्या घर है !!

[सुनयना आकर एक कुर्सी पर खड़ी होकर कुछ उतार रही है कि सामान वगैरह गिरते हैं, सुनयना भी। सुनयना कराहती है। सब भाग कर जाते हैं]

सुनयना—अः हः हा घुटना फूट गया ! चकनाचूर हो गया···हाय राम···

काशी—(जल्दी से पहुंच कर) क्या ? क्या हो गया मां ?

पिरथी—(व्यस्तता से) मैं पूछता हूं ! कि क्यों यह सब फालतू काम कर उठाती हो तुम !!

मोहिनी—(कांख कर) अरे...यह कुरसी...तो हटाओ ! पूरा पैर पिलूधा हो गया है...खून निकल रहा है।

काशी—(व्यस्त भाव से) खून ! खून ! निकल आया है, लाना तो भइया···स्पिरिट···कहीं सैप्टिक न हो जाये।

पिरथी—अभी लाया। अभी (पेन्ट पकड़े हुए जाता है)

[सुनयना कराहती है]

मोहिनी—गिर कैसे पड़ी मां ?

सुनयना—गिर कैसे (कराहती है) यह निगोड़ी कुर्सी भी तो...करम फूटी···ऐसी है कि उसका एक पाया···पूरा ज़मीन पर बैठता ही नहीं। खड़ी होकर ज़रा सा (कराहती है) जरासंभाल कर! काशी !

काशी—(संभालते हुए) हां मां ठीक से बैठ जाओ न ! मां, भला उस आले में तुम ढूंढ क्या रही थीं ?

सुनयना—अपना सर (कराहती है) कल है कथा···उसी के लिये चंदन...का मुट्ठा ढूंढ रही थी और क्या !!

पिरथी—(आता हुआ) यह रही स्पिरिट। (तत्पर होता है) हां मा— तो अब भाई! मैं पहले कहे देता हूं...कि यह तो चोट पर लगेगी, ज़रा सी...जी कड़ा कर लो ! काशी तू पकड़ ले...पैर···मैं फाहा रखता हूं···हां ! तैयार—(रखता है)

[सुनयना हाय हाय करती है]

काशी—(समझाते हुए) बस···बस···बस···क्यों बच्चों की तरह चिल्ल पुकार मचाये हो ?

सुनयना—(बिगड़ कर) अरे चल हट !! आई है बड़ी ! आग पड़ गई है···आग···और कहती है···(बाहर दो चार लोगों की आवाज़ें)

पिरथी—दादाजी आगये दीखते हैं, दादाजी तो होंगे ही ! और कौन है !

काशी—(ज़रा दूर से नीचे देखती हुई) मां पुरोहित जी हैं। दया-राम पुरोहित। तुम दूसरे कमरे में चल कर ज़रा लेट जाओ।

[अंदर आते हैं]

पुरोहित—इशमें शमझणे की बात है…वैशे…है…कुछ नहीं। इशमें किशी का दोस नहीं…ना…शरकार का…ना अपणा और णा तुम्हारा! भाई! ग्रहों का फेर है—शब इण ग्रहों का!! शणि में मंगड़ के शाथ…शाथ कण्या।

काशी—बापू! मां अभी-अभी कुर्सी से गिर पड़ीं।

नाथूराम—(चौंक कर) कुर्सी से गिर पड़ीं ?

दादा—(चश्मा उठाते हुए) यानी के…बैठे बैठे !!

पिरथी—बैठे बैठे! सॉरी…दादाजी (सीरियस) किसी के चोट आये और आपको मज़ाक की सूझे—खून खच्चर हो गया। अभी अभी बोतल भर स्पिरिट लगाई गई है।

दादा—(आंखें तरेरते हुए) मज़ाक! यानी के मैं तुझसे मज़ाक करूंगा! मगर यह स्पिरिट लगाने की क्या ज़रूरत थी! फिटकरी और कत्था क्यों नहीं लगा दिया? या फिर चुटकी भर बूरा और देसी कपूर डाल देते—नहीं तो ज़रा सा चूना।

काशी—(ऊब कर) आप तो दादाजी! एक पंसारी की दूकान…स्टार्ट करलें बस! एक बार शुरू हो गये…तो फिर फुलस्टाप…तो जैसे आपकी भाषा में…है ही नहीं।

दादा—(ऊंची आवाज़ में) हां-हां…लेक्चर ख़त्म करके…ज़रा काम की बात…बता।

नाथूराम—मगर हैं कैसी वो अब! कहां! आगे वाले कमरे में हैं!! (जाते हुए) मैं अभी आया दादाजी!

पुरोहित—(अपने में मगन) अपण तो पहले ही जानते थे के कुछ बिघण होगा। चलते तो छींक हुई थी, कौवा तीण बार बायें बोला था, बिल्ली मोड़ पर रास्ता काट गई थी, और घर के ऐण शामणे आपणे छींका था।

दादा—(बिगड़ कर) ज़रा होश की गिरह दशा देखो—पंडित दयाराम। मैं ने छींका था कि तुम छींके थे ?

पुरोहित—(अपने ढंग से हाथ जोड़ते हुए) चलो अपणे ही छींका था, पर उससे कोई विघण में कमी तो नहीं पड़ गयी। अब कौण शम्भालेगा शणि के शाथ मंगड़ और वो भी कण्या राशि पर। उशका भियाणक अशर……(आंखे निकाल कर ऊपर देखता है और हाथ से कल्पित गर्दन मरोड़ने का इंगित)

दादा—(शंका उठाते हुए) हां। यह बात है तो सही। पर बहू की राशि कन्या तो नहीं।

पुरोहित—णहीं। उणकी तौ शिंघ राश है! शिंघ!!

[दूसरे कमरे से अवाज़ ऊपर उठती हैं कमरे का पार्टीशन सामने है। दोनों कमरे दिखाई देते हैं]

सुनयना—(भरी भरी सी) बड़ आये हैं। पूछने वाले। कि क्या हो गया ? क्या बताऊं…अब क्या करोगे सुन कर ? तुमको घर की क्या फिकर ? जाओ…घूमो…फिरो जाकर। कौन रोकता है ?

नाथूराम—(बीच बीच में) अरे सुनो भी। कुछ बताओ भी तो। ज़रा देर के लिये ही तो बाहर गया (समझाते हुए) ज़रा धीरे बोलो। धीरे! पुरोहित को बुलाने के लिये तुम्हीं ने तो कहा था। कल है क्या ? धीरे बोलो। धीरे।

सुनयना—(ज़ोर से) क्यों बोलूं धीरे से !! बताना ज़रा। क्या कोई चोरी की है…मैंने किसी की, क्यों ?

नाथूराम—(मज़ाक में) की तो क्या…पर कोशिश की गई ज़रूर दीखती है!

सुनयना—(नाराज़ होकर और भी ज़ोरों से) तो यूं कहो। कि हंसी-कर रहे हो मेरी। कितनी बार कहा कि इस तरह की कुर्सी

को आग लगा दो, पर जाने क्यों, ऐसी वैसी चीजें गलेसे लगा कर रख छोड़ी गई हैं। (कुछ रुक कर) इसीलिये तो नहीं… कि मेरी टांग टूट जाय !

नाथूराम—(कान पर हाथ रख कर) अच्छा बाबा…मैंने चोरी की। तुम तो बस और किसी की सुनतीं ही नहीं ! लो तुम जीतीं मैं हारा ! तुम जीतीं मैं हारा !!

[दादाजी और पुरोहित की आवाज़ उभरती है]

दादा—(सोचता हुआ) कन्या राशि तो नाथूराम की ही मालूम देती है…वैसे यह ज़माना ही कुछ ऐसा आ गया है कि आज कल के आदमी…सभी होल सेल…कन्या राशि हुए जा रहे हैं। (लम्बी सांस लेकर) हमारा भी…ज़माना था दयाराम !

[पिरथी अन्दर आता है छींट की मेनीला शर्ट पहने हुए और उसे देख कर काशी और मोहिनी हंसती हैं]

पिरथी—(ताव से) दादाजी ! आपका यह स्टेटमेंन्ट ठीक नहीं। यानी…कि सभी आदमी कन्या राशी वाले हुए जा रहे हैं ! यह ट्रूथ को सरासर ट्विस्ट करना है। (काशी से) तुम खी—खी—खी—कर रही हो !

काशी—(हंसते हुए) तुम यह बुश शर्ट पहन कर बिल्कुल सिली लग रहे हो भइया।

मोहिनी—भाई, यह तो ज़रा अच्छा नहीं लगता तुम पर। अलबत्ता कपड़ा अच्छा है मगर……।

काशी—(बात पूरी करते हुए) ब्लाउज के लिए !!

दादा—(अचंभे में उसकी ओर चश्में से झांकते हुए) जी ! मैं·· मैं··· ट्रूथ को ट्विस्ट कर रहा हूं ! (आगे बढ़ते हुए) आप यह लड़कियों के कपड़ों को धारण करके सिंह ही तो लग रहे हैं न !!

कसर रह गई है तो अयालों…की…वह भी बढ़ा लीजिये। काशी चोटी कर दिया करेगी।

[काशी हंसती है]

पिरथी—(ताव से) ह्वाट डू यू मीन दादाजी। यह तो लेटेस्ट फैशन की मेनीला शर्ट है साढ़े सत्रह रुपये की।

दादा—(घृणा से) सांगानेरी कपड़े की बनवा लेते। और नहीं तो सस्ती तो पड़ती ही।

पुरोहित—(बीच में) इशमें किसी का डोश नहीं, ग्रहों का फेर है। ग्रहों का !! काशी बाई। एक गिलाश ठण्डा (रुकता है) जल मिलेगा।

सुनयना—(अन्दर से) अरे काशी। पुरोहितजी को ज़रा शर्बत देना न…(कांखती है) कहां से कहां…मैं भी आले पर चन्दन ढूंढने गई थी !!

पुरोहित—(हाथ जोड़ते हुए) हें–हें–हें अपण को तो बश…ठंडा जल होणा बाई। ठंडा…।

दादा—(बीच में) क्यों। क्यों। पंडित !! शर्बत पियो न।

पुरोहित—(पेट पर हाथ जाता है) हें–हें–हें जीमणो जाणा है ना। दादाजी।

दादा—तो इसमें क्या ? शर्बत से भूक और खुल कर लगती है, अलबत्ता ठंडा हो और हो देसी।

काशी—(बात पूरी करते हुए) बूरे या देसी मिस्री का। क्यों दादाजी।

दादा—जा-जा। दो गिलास लाना लपक कर। फिर बातें बनाना।

काशी—सॉरी दादाजी (जाती है)

दादा—तो पंडित दयाराम। मैं कह रहा था…कि…क्या कह रहा था…(सोचता है) कि…तुम्हारा बेटा जिये हां—मंहगाई—अब

देखो ये ख़रबूजे साढे तीन आने सेर बिक रहे हैं। अपने समय में साढे तीन आने में तो एक ऊंट ख़रबूजा मिलता था। बोलो भाई कि झूठ कहता हूं ?

पुरोहित—(सर हिला कर) शो तो इशमें न शरकार का डोश है, और न किशी का। पण आपणा ही शमझो डाडाजी।

दादा—(आंखे चढा कर) आपणा ! क्या मतलब…पुरोहित। यानी पंडित जी।

पुरोहित—(पत्रा देखते हुए) ग्रह देखो ग्रह…मंगड़ पर राहू और केतु का (एक्शन के साथ) दे चक्कर—दे चक्कर—दे चक्कर (आंखें बन्द करके ऊपर देखता हुआ) नारायण ! नारायण ! पाहिमाम् ! पाहिमाम् !!

दादा—(घबड़ा कर) यानी क्या-क्या हुआ ?

नाथूराम—(आता हुआ दादाजी के साथ ही साथ) क्या हुआ। क्या हुआ दादाजी!! अरे कुछ बोलिये भी न। क्या इस तरह सिर पर हाथ धर कर बैठ गये !!

दादा—क्या बोले ! कोई। वही भक्त वत्सल जाने……

पुरोहित—(इशारे से) मंगड़ पर राहू का…दे चक्कर (आंखें बन्द करके ऊपर की ओर) पाहिमाम् ! पाहिमाम् !!

नाथूराम—पर इसका कोई उपाय भी तो होगा ? उपाय तो हर चीज़ का होता है (पुकार कर) पिरथी— ए पिरथी !

पिरथी—(अंदर से) हां बापू ?

नाथूराम—(वैसे ही) पूछना जाकर उनसे कि कथा के लिये पुरोहित जी से क्या कह दिया जाय ? (ज्योतिषी जी से) तो भला क्या इसी का असर है कि बैठ ठाले घर में यह कांड हो गया ?

दादा—बड़ी बिचारी काम काजी बहू है। बिल्कुल लक्ष्मी। नाथूराम।

लक्ष्मी!···क्या समझे। जो कुछ बन पड़े कर डालो।

[काशी बाई शरबत लिये हुए आती है]

काशी—लेना दादाजी! ये गिलास और पुरोहित जी! ये रहा आपका। आप वाले में ज़रा चीनी ज्यादा है।

पुरोहित—(खुश होकर) शो तो है ही बाई! में तो पुराणा आदमी हूं न!

पिरथी—(आकर) तो मैं कह रहा था—अम्मा कहती हैं कि कल कथा रहने ही दी जाय।

दादा—(बिसूरते हुए) वहू के बारे में···कुछ उपाय···क्या बतायें (शर्बत पीते पीते) चोट गहरी लगी होगी···नहीं तो इस तरह कथा का दिन वह न जाने देती।

पुरोहित—(उदास होकर) शो तो है ही (शर्बत पीते हुए) पण इसमें किशी का डोश नहीं···न शरकार···

पिरथी—सॉरी पंडित जी। सरकार!

पुरोहित—हें-हें-हें-हें-यानी भगवाण का···वो तो शरकार हैं न! हें-हें···तो डोश उनका भी नहीं···भागवत में···क्या कहते हैं··· कि लिखा है...कि डोश भगवाण का भी नहीं...पण आपणा ही शमझो।

काशी—सॉरी···पंडितजी···यानी मां का दोष!

दादा—तुम चुप रहो काशी! (पुरोहित जी से) तो कुछ उपाय बताइये न पुरोहित जी!

पुरोहित—उपाय! हें···हें···हें···डाडाजी! मैंणे कहा था न कि अप-शकुण हो गये थे। (उदासी से) कथा कल नहीं होगी···शो तो उपाय करणा ही होगा। (अपने में मगन हाथ जोड़ते हुए) ग्रहों का फेर क्या कहते हैं कि मंगड़ पर केतु का चक्कर

और राहू (दूर दिखाते हुए नेपथ्य की ओर) खडा झांक रहा है।

नाथूराम—(आंखों पर हाथ रख कर दूर देखता हुआ) कहां! वह तो पिरथी है—पुरोहितजी…(पिरथी से) कहां कपड़े पहन कर जा रहा है? ज़रा कलम दवात कागज़ वगैरह लेते आना। पुरोहितजी सामान लिखा दें।

पिरथी—अभी आया बापू!

पुरोहित—(पत्रे में ही) शिंह राशि…पर क्या करेगा…बेचारा शिंघ जब राहू और केतू से टकड़ा गया—बड़ा यतण करणा पडेगा। वो तो राहू पूरा पूरा जोर नहीं कर पाया…नहीं तो जाण का खतरा था।

नाथूराम—(घबरा कर) पिरथी!

पिरथी—(आता हुआ) आया बापू! (धीरे से काशी से) बहिन काशी! सिनेमा हाथ से निकल जायेगा…तू ही ज़रा लिखले।

काशी—(धीरे से) भाई मेरे! कौन मुझे ले जा रहे हैं आप—(ज़ोर से) आई मां! आई!! (पिरथी की तरफ) फ़ुर्सत नहीं है; सॉरी।

[जाती है]

पुरोहित—(पत्रे से झांकते हुए) लिखो! क्या लिखा!! लिक्खा?

पिरथी—(झुंझलाया सा) जी! कुछ नहीं।

पुरोहित—(हंसता है) शो तो है ही—डोश इशमें--खैर तीण शेर तिल एक भी सफेद नहीं…राहू है…राहू--१०८ शुपारी, १११ पान। (गिनता हुआ) आठ…और…एक नौ…नौ ग्रहों के… नौ नारियल। (सोच कर) ठीक देख लेणा! हां! सडे न हों! ओर तुम्हारा बेटा…

पिरथी—(लिखते हुये, चिहुंक कर) बेटा…जी……?

पुरोहित—[पत्रे में देखता हुआ] बेटा जिये…डेढ शेर मिशरी--देशी-कुछ फल—ख़रबूजे–चार शेर–आम–दादाजी ! आम तो आते हैं न ?

दादा—[हड़बड़ा कर] पर मंहगे बहुत हैं !

नाथूराम—[वैसे ही आतंक से] डेढ के सेर से कम नहीं।

पुरोहित—[अपने में मगन] शो तो है ही–जमाना ख़राब है–पण मंगड़ ओर केतु तो पीड़ो फड़ मांगता है, ग्रहों की बात है हां !

काशी—[दूसरे कमरे से] लुकाट लिखलो–या खिरनी भी पीली होती है—अच्छी रहेगी।

पुरोहित—[बड़बड़ा कर] लुकाट–और खिरणी भी कोइ फड़ है–राम राम दादाजी ! बोलो तो–लिखो पांच शेर आम।

पिरथी—[लिखते हुए] पांच सेर आम—कलमी या तुख्मी ?

नाथूराम—दादाजी, मेरे सर में कुछ घुन्न ! घुन्न। हो रहा है–मैं ज़रा भीतर हो आऊं। [जाता है] [दूरसे आवाज़ आती है] ज़रा ठंडा पानी देना काशी–खूब ठंढ़ा हां।

दादा—नाथूराम ! सो तो होगा ज़रूर !! हां–हां–मगर पुरोहित जी ! क्या कहते हैं…कि–यह तो–आंय…यह तो !

पुरोहित—[बमक कर] कुछ न बोलो दादाजी ! आज मुझे निबट लेणे दो—इण सब ग्रह णक्षत्रों से ! [तेज़ी में] कुछ रतण भी हो जायें। पीड़ा याणी पुखराज।

पिरथी—(लिखता हुआ) पुखराज—कै सेर।

दादा—(चौंक कर) सेर—यानी पुखराज…सेर— पंडीत जी !

पुरोहित—(चौंक कर, डरता हुआ) शेर--शेर-कहां (इधर उधर देखता है) का क्या होगा।—(आश्वस्त होकर) णहीं ! णहीं ! पण दो तो जरूर हों !

पिरथी—सॉरी पुरोहित जी—सॉरी दादाजी…

पुरोहित—हां ! बीश-बीश रूपये के।

पिरथी—(खिलता हुआ) बीस बीस के दो पुखराज और···

दादा—(नाराज़ी में) पिरथी ! नाथूराम से कहना कि मैं ज़रा चलता हूं। क्या ज़माना आ गया है···हमारे ज़माने में···ऐसी लड़ाई ग्रहों नक्षत्रों में नहीं होती थी···एक मंगल और केतु के लिये··· इतना सामान ! कि···जैसे कोई ग्रेट बार' हो रही हो !! (दर्शकों की ओर) हां ! ब्राह्मण वगैरा जिमा-विमा दिया···और अलग हुए—यानी खूब ! बड़ा भारी चक्कर है—(जाता है)

पिरथी—(आस्तीन चढ़ाता हुआ) बोले जाओ पंडीत ! और मैं लिखे जाऊं—अब सिनेमा तो शुरू हो ही गया होगा—बोलो मेरे यार···।

पुरोहित—(उत्तेजित स्वर में) आज शब से शमझ लूंगा (पत्रे में देख कर)—हां मंगड़ ! दही दो कूंडी—मलाई वाड़ी।

पिरथी—लिखी।

पुरोहित—मिठाई पंचमेड़···पांच सेर—केतु—(सरहिला कर) दश ब्राह्मण जिमाये जायें···उनका पूरा सामान।

पिरथी—वह भी लिखा।

पुरोहित—(पत्रे में देखता है, फिर ऊपर देखता है) राहू खड़े झांक रहे हैं ! राहू !! हां-हां (इस तरह कहता है जैसे किसी को मार रहा हो) पांच जोडे कपडे--और पांच दुशाड़े (हंसता है)।

पिरथी—(अपने में मगन कलम बंद किए) और आगे बढ़ो।

पुरोहित—(ललकारता हुआ) और आगे आओ कोई—क्या शमझ रखा है—दयाराम पंडीत शे पाड़ा पड़ा है···(हंसता है) चांदी मंढे हुए खडाऊं—दो जोडी, कचूकर निकाड़ दूंगा··· मार-मार के···।

पिरथी—(वैसे ही उत्तेजित स्वर में) और लिखाओ—आज सारा कागज़ और स्याही खतम करके मानूंगा।

पुरोहित—(बड़ी ज़ोर से खड़े हो कर) और--और--ग्यारा दर्जण केड़ा…।

पिरथी—(हुंकारते हुए) और ! कलम तोड़ डालूंगा।

(फेड आउट)

समझने की बात है

—:o:❊:o:❊:o:—

समय : रात्रि के लगभग नौ बजे

स्थान : पिरथी का कमरा

निर्देश :—

कमरे की सजावट के लिये बीच में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र या शेक्सपियर का एक चित्र, कुछ अन्य भी नौसिखिया आर्टिस्टों के हाथों के बनाये गये, नहीं तो सिनेमा स्टारों के चित्र। इसके अतिरिक्त कुछ बैडमिंग्टन रैकेट आदि भी हों। बैठने का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाय कि जब परदा खुले, तो सभी प्रगाढ़ चिन्ता में मग्न, कुछ उसी के अनुकूल वातावरण को बनाने में तत्पर दिखाई दें। पोशाकें सभी की ऐकराना हों, मय धूप के चश्में के, जिसको समय समय पर निकाल कर हाथ में घुमाया जा सकता हो, हवा में हिला हिला कर बोलते समय अपने विचारों की पुष्टि में भी काम में लाया जा सकता हो, तथा और कुछ नहीं तो फिर ठोड़ी खुजाने या दांत में लगाये रखने के लिये ही काम में लाया जाय। क्योंकि

यह सब स्टारों के तौर तरीकों में शामिल हैं। पोशाकें एक से एक, जहां तक बने तड़क भड़क वाली हों, सिर के जूड़े दाहिने, बांए, या ऊपर हों, मतलब यह कि वैसे न हों जैसे साधारणतया हुआ करते हैं। एक खिड़की होना आवश्यक है—स्टेज़ के पिछले भाग में, जहां समय समय पर पिरथी जाकर दर्शकों की ओर पीठ करके खड़ा हो सके—डायरेक्टराना ढंग से—चिन्ता मग्न।

पात्र :—

नाथूराम	पिरथी
माया	दमन
लोकनाथ	दमयन्ती
काशीबाई	आशा

पारबती, तथा मोहन बाबू, दो एक लोग और जो स्टेज पर नहीं आते।

—:❀:०:❀:—

समझने की बात है

[पिरथी, उनके मित्र दमन, काशीबाई उनकी मित्र दमयन्ती, लय माया के मौजूद हैं। पिरथी इधर से उधर-चिन्तित टहल रहा है]

पिरथी—(ऐक्शन से) सवाल तो ज़िन्दगी और मौत का समझो... देखने के लिये आप लोगों की भीड़ हाज़िर है। मगर, एक अदना से मसले पर सब को सांप सूंघ गया दीखता है (ऐक्शन) मैं पूछता हूं! कि अब होगा क्या !!

दमन—(उदासी से) होगा क्या! अब दिन ही कै रह गये ?

दमयन्ती—कुछ उपाय तो करना ही होगा; नहीं तो, इज़्ज़त बचाना मुश्किल हो जायगा।

काशी—(दार्शनिकता का पुट देती हुई) इज़्ज़त भी आनी जानी ही समझो, अब आई तो बन आई; और जब गई, तो चली गई। लेकिन ज़रा मैं भी तो सुनूं! की आखिर इतनी परेशानी की वजह क्या है ?

पिरथी—सारी रामायण हो गई !! पर लंका कांड की वजह आपको मालूम न हो सकी। जियो! क्या खूब! शाबाश !! (पुकार कर) पारबती! चाय-छह-प्याले।

पारबती—(आते हुए) क्या-क्या-अब चाय छह प्याले हो गई !!

अरे जरा तो ख्याल किया जाय छोटे बाबु ! [दर्शकों की ओर] दो प्याले चाय !! दम लिया नहीं कि चार प्याले चाय !! फिर पांच और...अब हो गया छह !!

पिरथी—काशी ! क्या कहती है यह ? इसको समझा दो–कि ज़बान दराज़ी और कामचोरी मुझसे नहीं चलेगी।

काशी—(आंखें चढ़ा कर) हां। सुन लो पारबतीजी ! बापू, मां और भाभी सब गये हैं बाहर–डाक्टर, हकीम और वैद्य के यहां, और इस तरह इस समय सरकार हैं--छोटे बाबू-यानी भइया जी !! (आंख से इशारा करती हुई) ये कह रहे हैं, ज़बान दराज़ी और कामचोरी बिल्कुल नहीं चलेगी। भाई साहब का गुस्सा तुम जानती ही हो कि कितना ख़राब है।

पारबती—(सुनी अनसुनी करती हुई) गुस्सा ख़राब है तो हुआ करे, आने दो बाबूजी को।

काशी—पारबती ! चम्पत हो जाओ यहां से, नहीं तो, प्याले आठ होते हैं अभी।

पारबती—(वैसे ही बड़बड़ती हुई) मुझे तो अपना हिसाब चाहिये-हिसाब, मुझ से नहीं होगी यह गुलामी।

[जाती है]

पिरथी—(चारों ओर देख कर) नॉनसेन्स, मेरा बस चले तो अभी खड़े खड़े डिस-मिस कर दूं।

दमयन्ती—(उकसाती हुई) अरे देखो तो ! कैसा बढ़ चढ़ कर बात करती है। नौकर न हुई......

दमन—मैं तो कहूंगा कि नौकरों को सर चढ़ाया कि गये...

काशी—(लापरवाही से) सर तो कोई तब चढ़ाये जब कोई नौकर कुछ दिन टिके। यहां तो सर झुकाये आते हैं ज़रूर, लेकिन

मुरझाये पौधों की तरह, कि जड़ों में पानी पड़ा और वह तने। जहां दाना पानी मिला नहीं---कि यह भी तने--और लापता हुए।

दमयन्ती—(बात बदलते हुए) समस्या है--घोर समस्या!! पिरथीजी! 'सोशल प्ले' अब जाने दो। अब तो कोई 'पौराणिक' या 'ऐतिहासिक' सम्हालो। 'जयद्रथ बध' भला कैसा रहेगा ?

पिरथी—(कुछ सोच कर) चलेगा ? 'अभिमन्यु' चलो मैं बन ही जाऊंगा-मगर 'अर्जुन' का क्या होगा ?

माया—(आगे आकर) मैं जो हूं! ओह! अर्जुन का पार्ट तो सारा मुंह ज़बानी मुझको याद है।

पिरथी—(उपेक्षा से) आप बनेंगे अर्जुन !! माया बहादुर, ड्रामा सीरियस टाइप का है-सीरियस, और आप शायद समझे यह कि मज़ाकिया मज़लिस है। (आवाज़ ज़रा तेज़ होती है) आप 'अर्जुन' बन कर स्टेज़ पर उतरे तो देखने वाले ज़रूर भाग खड़े होंगे।

दमन—(समझाते हुए) हां माया! जाने भी दो। अर्जुन का पार्ट, तुमसे जमेगा नहीं। उसके लिये और कुछ नहीं…तो परसोनालिटी तो चाहिये ही।

दमयन्ती—(वैसे ही) ना, ना, यह पार्ट माया !! तुम्हारे बस का नहीं। जयद्रथ का तो शायद कुछ फिट भी बैठे। न हो तो एक दाढ़ी लगा लीजियेगा! बस……।

माया—(बिगड़कर) क्यों लगाऊं दाढ़ी! आप न लगा लीजिये दाढ़ी! यह बात, वह, बात…दाढ़ी लगा लीजिये! बस अच्छे अच्छे पार्ट आप खुद करें और हम बने जयद्रथ (हाथ बराबर चल रहे हैं) पिछले साल प्रिन्सिपल साहब घबड़ा

कर रह गये थे। बोले! अब तुमने भीम का पार्ट तो सम्हाला, मगर दुर्योधन का क्या होगा ?

काशी—(ड्रेमेटिक अन्दाज़ से) 'माया' ने 'दुर्योधन' का पार्ट भी सम्हाल लिया, एक पैतरा लेकर बार करने के बाद चट 'भीम' बन कर झेलने के लिये स्वयं प्रस्तुत और खटाखट भीम पर वार! (ताली बजा कर) कमाल कर दिया···सारे रिकार्ड तोड़ दिये माया! बीरन मेरे।

पिरथी—(तेज़ होकर) 'शट अप'। ज़िम्मेवारी मेरी है 'ड्रेमेटिक क्लब' का 'सेक्रेटरी-डायरेक्टर भी मैं ही हूं। बिगड़ी बात के बनाने में मदद तो अलग, बस यह पार्ट नहीं करूंगा। वह पार्ट नहीं करूंगा। (मायासे) आखि आप चाहते क्या हैं ?

माया—(दृढ़ता से) पार्ट।

पिरथी—(चौंक कर) पार्ट ? तो करिये न कौन रोकता है! मगर जो फबेगा वही न !!

माया—(तय करते हुए) मैं तो अर्जुन बनूंगा।

पिरथी—(परेशान होकर) फिर वही, मैं अर्जुन बनूंगा। यानी अगर किसी ड्रामें में सभी अर्जुन यानी 'हीरो' बन बैठने की ज़िद करें, तो फिर उस ड्रामें का होगा क्या ?

दमयन्ती—(समझाते हुए) ज़िद क्यों करते हो माया! मान भी जाओ!

दमन—(वैसे ही) अर्जुन वर्जुन बनने में क्या रक्खा है ? असल में पार्ट तो जयद्रथ का है, कर भी देखो न, मेरे यार! क्या 'कैरेक्टर एक्टिंग' की गुंजाइश है।

माया—(विलेन की तरह) नहीं करते, हज़ार बार नहीं करते। समझा क्या है माया को !! जाने कित्ते हीरों के पार्ट कर-

कर के, भुगता दिये; और अब करूं थर्ड क्लास पार्ट !! नहीं होगा ऐसा।

पिरथी—(परेशान) क्या परेशानी है ! आशा की बच्ची ने 'ऐन टाइम' पर धोखा दिया। अच्छा ख़ासा 'निराश-प्रेमी' का साजो सामान हो चुका था। रिहर्सल भी माकूल···कि बस विघ्न पड़ गया। पिताजी ने हुकुम कर दिया कि नहीं होगा यह ड्रामा। अब कौन बताये इन बुजुर्गवारों से, कि यारो ! दुनियां का ढांचा ही बदल गया है, हम लोग तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं···(कुछ सोच कर) बल्कि बढ़ चुके हैं।

आशा—(आते हुए, एक्ट्रेराना अंदाज़ से) हेलो पिरथी···काशी··· अच्छा दमन भाई-और दमयन्ती भी हैं !! कहिये क्या तय पाया ?

माया—(दुःखी स्वर में) मैं भी तो हूं ! देखो भाई लोगो !! (दर्शकों की ओर) यह होता है, जयद्रथ का पार्ट करने वालों का— कि कोई 'नोटिस' ही नहीं लेता।

आशा—(शरारत से) नोटिस ! माया जी ! आपका डील डौल ही ऐसा है कि आंखों में एक बार में तो समा नहीं सकता। दो खेप से कम में तो क़तई नहीं।

[हंसी की लहर]

काशी—(माया से) तो आपने कौन सा जयद्रथ का 'मेक अप' कर रक्खा है—हैं तो वही के वही। (आशा से) आशा तुम्हारे पिताजी ने चौपट कर दिया बना बनाया काम-सब ढिस करके रख दिया।

पिरथी—और वजह कुछ समझ में आई नहीं।

आशा (आश्चर्य से) क्यों ? बाबा का कहना है 'कालेज' है पढ़ाई के लिये ! न कि आये दिन ड्रामा, नाच-कूद, खेल-तमाशा

और 'पोइट्री-रेशिटेशन' के लिये !! उन्होंने कहा…(बात कट जाती है)

पिरथी—(आंखों को हाथ से ढकता है) बस करो इतना ही काफी है। संकीर्ण विचारों और समय के साथ न चलने का इलाज कुछ नहीं। (दर्शकों की ओर) कैसे बताया जाय कि शिक्षा में कितने व्यापक परिवर्तन हुए हैं—धारायें बदल गई हैं। चरित्र-निर्माण-गठन-विकास के साधन, उनकी साधना…सभी कुछ तो बदल गया है, (आशा से) मगर इस दुखान्त घटना के घटने का शुभमुहूर्त कहां से हुआ !!

आशा—(एक लम्बी सांस लेकर) शुरू क्या…मैं तो वही पांचवें सीन के आखरी 'डायलॉगों' कि प्रैक्टिस कर रही थी।

पिरथी—(आंखें बंद करके) निराश प्रेमी वाले में !!

आशा—(ड्रेमेटिक अंदाज़ में) हर खूबसूरत सुबह का, हर रंगीन शाम का, हर कहानी का अंत होना ही है ! यह प्रकृति का नियम है ! आदि के साथ अंत का वैसा ही साथ है जैसा फूल के साथ सुगन्ध का। यह सब भी…एक स्वप्न…उस मधुर स्वप्नकी तरह…भूल जाने दो, जिसका याद जीवन भर बराबर टीसती रहती है ! एक ऐसा दर्द… जो मिलने पर कभी साथ नहीं छोड़ता !!

पिरथी—(उसी तरह) हां ! जो कभी साथ नहीं छोड़ता…बराबर टीसता रहता है। (लम्बी सांस) अब तो जाना ही होगा ! तुमको रोक सकना संभव नहीं, यह सत्य है। पर, यहां से चले जाने पर भी तुम्हारा कुछ यहीं रह जायगा–'वह कुछ'–जो अब मेरा हो चुका है।

आशा—(उतावली से, ऐक्टिग के ही अंदाज़ से) मगर प्रेम बाबू ! इसका मतलब यह नहीं है—यह नहीं—फूट पड़ती है)

पिरथी—(खोया हुआ सा) मगर तुम्हारे चेहरे पर खिली चिरपरि-

चित मुस्कान सदा याद रहेगी। जिसके खिंच जाने पर फूलों की ताज़गी सहसा मन में बस जाती है। चांदनी गूंज कर गुनगुना उठती है…लगता है…दूर घने बादलोंमें…बिजली चमक कर…अचानक कहीं पर…हमेशा के लिये थम गई हो…जाओ !!

दमयन्ती—(ताली बजा कर) अरे ! क्या बात है ?

दमन—(ऊंची आवाज़ में) ऐसा जमता…कि लोग झूम झूम उठते… पागल हो जाते।

माया—(बे दिली से) पागल हो नहीं जाते—आपके खेल में सिर्फ पागल ही जाते। (मुंह चिढ़ा कर) 'निराश प्रेमी' !! यह भी कोई ड्रामा हुआ ? ज़माना अब यह नहीं पसन्द करने का [धिक्कारते हुए) ट्रेजेडी कहीं की !

पिरथी—(पास जाकर) तो आप क्या कहना चाहते हैं ?

माया—(लापरवाही से) यही कि मुझे जंचा नहीं…हीरो का पार्ट ! यह भी क्या—कि जैसे कोई मरगिल्ला चूहा चूहेदानी में फंस कर चूं…चूं…कर रहा हो...हीरो...[बुलंद आवाज़ में] हीरो मर्द होता है...डायरेक्टर साहब....मर्द...क्या समझे ? डंके की चोट पर अपने मनोभावों को कहने की जुर्रत रखता है।

काशी—(समझाते हुए) मगर 'सिचूएशन' पर गौर कीजिए मायाजी ! यह डायलाग उस कमरे की खिड़की के नीचे हो रहे हैं जिसमें हीरोइन के पिता बैठे हुक्का पी रहें हैं।

दमयन्ती—जी ! ज़रा आवाज़ में मर्दानगी आई नहीं…कि…हुई दोनों की कुन्दी !

आशा—मतलब यह कि भूले से 'डंका-वंका' बजा कि 'लाठी चार्ज हुआ ही समझो। [सर हिला कर] माया 'तुम हीरो कभी बन न पाओगे।

काशी—(सर हिला कर, एक चोटी आगे दूसरी पीछे फेंकती हुई) अब तो ज़माना दूसरा है···प्रेम कहानियों में भी हीरो-हीरोइनों को अक्ल की ज़रूरत पड़ती है। यह नहीं कि बात की बात में तलवार लेकर पिल पड़े और लगे होने जौहर।

दमन—(समझाते हुए) और फिर ड्रामा सोशल यानी सामाजिक है! न कि ऐतिहासिक या पौराणिक!

काशी—(ऐक्शन के साथ) जी हां. जहां बात बात पर लोग शंख बजाते रहते हैं और नहीं तो भाई लोग पांचजन्य ही फूंक रहे हैं। [बात बदलते हुए] मगर यह तो उस ड्रामे की बात है जो अब नहीं रहा। [पिरथी से] भइया फिर तय क्या हुआ ?

पिरथी—(पुकार कर) पारबती। मैंने कहा सात प्याला चाय। जल्दी।

पारबती—(आते हुए चिड़-चिड़े स्वर में) क्या कहा ? हाय राम !! यह भी कोई बात है कि···एक प्याला चाय और फिर एक प्याला चाय···एक प्याला चाय और ले देकर अब सात प्याला चाय!

पिरथी—(दृढ़ता से) ऐसा ही होगा! जैसी ज़रूरत होगी वैसी ही आज्ञा दी जायगी !!

पारबती—(तेज़ स्वर में) मगर हुक्म छोटे बाबू एक साथ मिलना चाहिये! उसके टुकड़े टुकड़े कर के नहीं!

पिरथी—(बिगड़ कर) तो यह मुझे कब पहले से पता था कि कितने लोग आ जायेंगे! अक्ल से काम लो! बत्तमीज़।

पारबती—अक्ल ही होती तो (सिसक कर दर्शकों की ओर) यहां नौकरी ही क्यों करती। (पिरथी से) हिसाब···[बात कट जाती है]

पिरथी—(उग्रता दबाते हुए) काशी, इसको समझा दो, जो हम इसको समझाना चाहते हैं।

काशी—(तत्परता से) तो लो भाई, समझ जाओ पारबती। छोटे बाबू सिर्फ चाय लाने की आज्ञा कर सकते हैं, हिसाब किताब नहीं कर सकते। पहली बात, दूसरी बात यह कि इस समय भइया का राज है जिसमें फरमाइश नहीं, आज्ञा ही मिलती है। [समझाते हुए] जा भाई जा, अपना काम कर।

पारबती—(जाते हुए) यह भी कोई बात हुई ! पानी उबलने पर हुक्म होता है फिर एक प्याला ! ठंडा पानी उसमें मिलाना पड़ता है और फिरऐसा ही बार बार कब तक करती रहूं ? कब पानी उबलेगा और कब बनेगी चा। (जाती है)

पिरथी—(गहरी चिंता के साथ) तो अब क्या किया जाय !! समय कम, और काम ज्यादा !!

माया—(उछल कर) एक 'व्हेराइटी प्रोग्राम' कर दूं ?

काशी—(उनको पीछे करते हुए) नहीं भाई माया। यह नहीं चलेगा।

माया—(बेधड़क) और क्यों नहीं चलेगा ? (ज़ोरों से) क्यों नहीं-चलेगा ?

दमयन्ती—(कान झारते हुए) कान के पर्दे झनझना उठे।

दमन—(धीरे धीरे) बात···धीरे से समझा कर करनी चाहिये।

पिरथी—(बनाबटी हंसी) बात काम की और सही अंदाज में, और माया से !! क्या बात कही है।

माया—(पहले की तरह ही ज़ोरों से) धीरे की बात , और किसी की समझ में आये तो आए पर आप लोगों के बिल्कुल नहीं आ सकती। फिर आप ने मुझे किसी 'सोशल प्ले' का

हीरो समझा है क्या ? जी नहीं ! वीरों का पार्ट किया है (आवाज़ उठाते हुए) भीम, दुःशासन; बना हूं, कर्ण, दुर्गा-दास, [एकाएक उछल कर काल्पनिक गदा हिलाते हुए वार ! वार ! बचो । [सब लोग एक साथ बोलते हैं । झगड़ा होता है शोर बढ़ जाता है । माया ! लग जायगी । अरे देख के ! क्या करते हो ! लाइट गई ! लाइट ! [नाथूराम वगैरह आ जाते हैं]

नाथूराम—(आते हुए) अयं···अयं···यह सब क्या बावेला मचा रक्खा है ? पिरथी···काशी···माया [बिगड़ कर] किसी के यह डंडा लग जाये तो !! क्यों इस तरह इसे घुमा रहे हैं ? यह पटेबाजी का अखाड़ा नहीं है ? इस तरह पढे लिखे लोग लड़ाई पर आमादा हो जायेंगे तो विश्व-शांति खतरे में तो है ही, पर इस घर की भी बुरी हालत हो जायेगी [चारों ओर देख कर] आख़िर यह···यह हो क्या रहा है ?

पिरथी—(शिकायत के स्वर में) ड्रामे की तैयारी शांति पूर्वक हो रही थी, कि माया अपनी उजड्डी पर उतर आये।

मया—(बीच में) मौसाजी ! यह बिलकुल ग़लत है। मैं...मैं··· मैं···मैं तो।

काशी—(आगे बढ़ कर समझाते हुए) मैं समझाती हूं। बापू ड्रामा तो तैयार था फस्टक्लास सोशल। मगर ऐन बक्त पर आशा के पिताजी ने 'वीटो' लगा दिया; कहा कि आशा पार्ट नहीं करेगी। वह सिर्फ पढ़ाई-लिखाई में अपना समय लगायेगी। बोलो तो भला ! कालेज, स्कूल, में केवल इसीलये लड़के लड़कियों को भेजा जाता है !! (घृणा से) क्या पुराने ख़याल हैं ! दक्यिानूसीपन की बू आती है।

दमयन्ती—शेम। शेम।

दमन—कुछ बात भी हो !

आशा—(सांस लेकर) मगर किया क्या जाय !! आख़िर हैं तो अपने पिता ही !!

नाथूराम—(अपना चश्मा साफ़ करके आंख पर चढ़ाते हुए) इसमें मुझे दकियानूसीपन की बू नहीं, अक़्लमंदी की ख़ुश्बू ज़रूर आती है। भला पढ़ाई-लिखाई की ओर भी इस तरह दिल-चस्पी कभी दिखाई है, आप लोगों ने ?

दमन—(आश्चर्य से) राष्ट्र निर्माण, चरित्र गठन, और मेन्टल डेवलपमेंट के लिये……

दमयन्ती—(और आश्चर्य से) सही शिक्षा के लिये कोरी किताबों के अतिरिक्त भी कुछ आवश्यक है।

आशा—(चकित सी) उन कुछ उपकारणों को, जिनसे कि हम दुनियां के मसलों को सुलझाने में आगे चल कर काम आ सकें।

नाथूराम—(साफा उतार कर अपनी चांद पर हाथ फेरते हुए) क्यों नहीं…क्यों नहीं……जिन उपकरणोंका बखान हो रहा है, वह सब तो रात दिन की धमा चौकड़ी…और आप लोगों के 'डिरामों' में ही पहचाने जा सकते हैं। (दर्शकों की ओर) !! यह दूसरी बात है कि हम दकियानूसी लोगों की समझ में न आये कि 'निराश प्रेमी' नाटकसे राष्ट्र निर्माण, या चरित्र-गठन या 'मेन्टल डेवलेपमेन्ट' की कौन सी क्रान्ति भड़कने वाली है ?

काशी—(सर हिला कर निराशा से) बापू ! तुम नहीं समझे। अरे, अब वक्त बदल गया है। आप लोग तो घोटा लगाने वाली पढ़ाई पढ़े हैं। जुगराफिया लिया घोट डाला। ज्योमेट्री ली तो जुट गये…पीछे पड़ गये उसके हाथ धोकर। हुं ! यह भी कोई बात हुई !! इससे मानसिक विकास के तत्व ही नष्ट हो जाते हैं।

पिरथी—आज विद्यार्थी की बहुमुखी 'प्रतिभा' और 'मस्तिष्क' के सर्वांगीण बिकास के लिये नये नये साधन उपलब्ध हैं।

नाथूराम—(सर हिलाते हुए) जी-हां, जी-हां। नई किताबों के बढ़ते हुए ढेर, ऐसे कपड़े वैसे जूते, खूब मालूम है। बात यह है, न? कि मैं इन्हीं सबके लिये तो कमाई करता हूं! बड़ी गाढ़ी कमाई है मेरे बच्चों! भला मैं न मानूंगा! समझूंगा!! (खिन्न मन हंसता है)

काशी—(समझाते हुए) समझे नहीं बापू। यह तो जीवन का स्तर बढ़ जाने से लगता है कि खर्च पहले से ज्यादा हो रहा है।

पिरथी—(ऐंठ के साथ) महज़ किताबों का घोटा लगाने का समय नहीं रहा, अब! बापू! हमें जागरूक होकर दुनियां के साथ चलना है। (दर्शकों से) हमें राष्ट्र का भी तो ध्यान रखना होगा।

नाथूराम—(दृढ़ता से) अच्छा तो सुन लो 'राष्ट्र के नये हिमायतियो' यह ड्रामा नहीं होगा। निर्माण, बौद्धिक-विकास, गाना, बजाना सब अपनी अपनी जगह पर हैं! और फिलहाल मैं समझता हूं-यह सब कुछ ठीक वैसा हो रहा है जैसा कि न होना चाहिये!!

लोकनाथ—(आते हुए) नाथूराम जी! अपनी कमल तो यहां नहीं आई?

नाथूराम—आओ भाई लोकनाथ! पिरथी, कमल आई थी क्या?

पिरथी—नहीं तो!

नाथूराम—(लोकनाथ से) वो तो यहां नहीं है, लोकनाथ!

लोकनाथ—(इधर उधर देख कर) यहां भी तो कोई ड्रामें का रिहर्सल ही हो रहा है!

पिरथी—यह सब तो सांस्कृतिक पक्ष में किये जा रहे नाटक प्रतियो

गिता में भाग लेने के लिये चल रहे हैं, चाचाजी! कमल अपने कालेज वाले में होगी। (ज़ोर से) पारबती! दो प्याले चाय और।

पारबती—(दूर से) दो···प्याला···चाय···और···। (रोनी आवाज़ में) अब भला कोई क्या करे, आने दो बड़े बाबू को।

लोकनाथ—(कुछ अटकते हुए) यह नाटक...प्रतियोगिता तो ठीक है, पिरथी! मगर···पढ़ाई···लिखाई भी तो होनी चाहिये! महज़ इस सांस्कृतिक चहल पहल में समय ख़राब करते रहा गया बेटा लोगो! तो होगे फेल, और हम पिता लोगों को दुहरे खर्च पड़ जायेंगे। क्यों नाथूराम?

नाथूराम—(मुंह बना कर) इन लोगों का कहना है हम लोग पुराने ज़माने के हैं। यह सब समझ न सकेंगे। और ठीक भी है, अपनी समझ में यह सब दर असल कुछ बैठता ही नहीं।

काशी—(कुछ तेज़ आवाज़ में) चाचाजी! आख़िर ड्रामें वगैरह आप के टाइम में भी तो होते होंगे?

लोकनाथ—होते तो जरूर थे। लेकिन ज़रा भी जोश नार्मल से बढ़ा···कि ड्रामें का क्लाइमेक्स सीन सामने आजात था···पात्र होते थे उसके तीन...यानी...। 'हीरो' हम, सूत्रधार पिताजी और विलन···डंडाजी...और अन्त होता था···घोर ट्रेजेडी। (हंसती है) याद है नाथूराम!!

नाथूराम—(कुछ दृढ़ता से) और शायद वही दृश्य अब मुझे फिर से दुहराना पड़ेगा! सिर्फ देर पात्र चुनने तथा इकट्ठा करने की है। रिहर्सल की भी ज़रूरत न होगी पार्ट मुझे खूब याद है और मय एक्शन के!!

दमयन्ती—(घबड़ा कर) काशी! मुझे बड़ा ज़रूरी काम याद आ गया है। मैं चली। नमस्ते (जाती है।)

दमन—(एकाएक याद करके) पिताजी ने कहा था वैद्य के यहां से दवा लेते आना। मैं तो भाई अब चला (जाता है)

आशा—(उतावली में) काशी डियर। अब तो मैं न रुक सकूंगी। बात यह है कि पढ़ाई करीब है न। 'एसे' तैयार करना है न! मैं चली। नमस्ते एवरी-बॉडी। (जाती है)

काशी—(हर एक को रोकती हुई) तो ऐसी भी···आखिर रुको भी न···अरे जाओगी ही···अच्छा अच्छा तो फिर मिलेंगे।

(सब चले जाते हैं नीचे से कोई पुकारता है)

आवाज़ १—(पुकार सुनाई पड़ती है) नाथूराम जी! ओ लोकनाथ जी!! दमन इधर तो नहीं आय था? कह रहा था, कुछ ड्रामा वामा करने जा रहा हूं। चार घंटे हो गये।

नाथूराम—(बाहर कि ओर देखते हुए अभी-गया है-माधो बाबू··· रास्ते में ही होगा। (पास आकर) लोकनाथ!! देख रहे हो···किस तरह एक पीढ़ी तो मस्तिष्क के विकास में लगी है, और दूसरी पुरानी वाली उसके पीछे पीछे उसकी खोज-खबर रखने में परेशान है।

लोकनाथ—(खोया हुआ) दुनियां की स्पीड यानी रफ्तार में बड़ा फरक पड़ गया दीखता है। साथ चलने को यूं समझो कि किसी चलती बस या ट्राम में बैठने की कोशिश। एक भूल हुई और रह गये पीछे।

[मोहन बाबू पुकारते हैं]

मोहम बाबू—(वहीं से) नाथूराम जी!!

नाथूराम—(वैसे ही) जी मोहन बाबू!

मोहन—(ज़ोर से) आशा अभी वहीं है क्या?

नाथूराम—(वैसे ही) आई तो थी, मोहन भाई ! मगर वह तो जा चुकी यहां से।

मोहन—(वैसे ही) क्या मुश्किल है ! यह तमाशा समझ में नहीं आता।

[पॉज़]

लोकनाथ—(सर के बाल खुजाते हुए) सुन रहे हो न नाथूराम !!

नाथूराम—तुम्हारी 'बस' व 'ट्राम' वाली बात ठीक ही है लोकनाथ ! बड़ी रफ्तार से चल रही और हम उसके साथ साथ भाग रहे हैं···न छोड़ने को जी चाहता है और न है कूद कर बैठने का साहस ही।

पारबती—(आते हुए) यह-यह-कहां का इंसाफ है कि आदमी को आदमी न समझा जाय (नाथूराम को देख कर बिखरती हुई) बड़े बाबू मैं तो...

नाथूराम—(चौंक कर) अयं-अयं यह है क्या ? इतनी बड़ी थाली में—

(बड़ी सी थाली में बहुत से प्याले चाय के)

पारबती—(चाय रखते हुए) नौ और यह रहे दस प्याले चाय, और क्या है ?

नाथूराम—नौ और यह दस प्याले चाय, क्या होगा यह भली मानस ?

पारबती—मैं क्या जानूं···अरे सब गये कहां (पिरथी से) छोटे बाबू !

पिरथी—(आते हुए) अब तो सब कोई चले भी गये। अब क्या फ़ायदा (डांट कर) अब तक क्या हो रहा था ?

पारबती—(हड़बड़ाती है) सब कोई चले गये! क्यों चले गये? अब इसका क्या होगा? (नाथूराम से) बड़े बाबू मेरी तो छुट्टी कर दी जाय। मुझसे तो उल्टा सीधा काम नहीं होगा।

काशी—(आते हुए) अच्छा अच्छा, अब मेहरबानी करके नाटक रहने दो! जाकर सीधे सीधे अपना काम देखो!!

[फिर कोई पुकारता है]

आवाज़ २—मैंने कहा पिरथी! यह कैसा ड्रामा है! कुछ और काम भी है कि नहीं! कब खतम होगा यह? मैंने कहा पिरथी! दमयन्ती कहां है?

लोकनाथ—(चलते हुए) मैं चला कमला का पता लगाने। नाथूराम! अच्छा भाई नमस्ते।

पिरथी—(आवाज़ देता हुआ) चाचाजी, दमयन्ती तो गई…कब की चली गई।

आवाज़ २—गई, अरे तो फिर घर पहुंची होगी। देखता हूं जाकर।

नाथूराम—(बिगड़ते हुए) सुन लो…तुम दोनों!! काशी और और पिरथी! मैं यह चाहता हूं कि पढ़ाई-लिखाई की ओर भी मुझे तुम लोगों का कुछ कमाल देख पड़े! ये…जो मैं… बोरियों पैसे…ख़र्च कर रहा हूं…उसके एवज़ में, मैं चाहता हूं केवल पुराने 'बुद्धि विकास' के ढंग ही आप लोग अपनायें! नहीं! नहीं! तो!! समय आने पर मैं…पुराने ढर्रे का ड्रामा खेलने के लिये मजबूर हो जाऊंगा। समझे!

काशी—(घबड़ाते हुए लेकिन कुछ उच्च स्वर में) बापू! तुम समझा तो करो! अपने सयाने बच्चों से…इस…तरह…! आख़िर आधुनिक मनोवैज्ञानिक तरीके किस लिये हैं?

नाथूराम—(बिगड़ कर) अच्छा तो अब मुझे अपने पुत्र तथा पुत्री से मनो-विज्ञान की शिक्षा लेनी पड़ेगी!!

पिरथी—(समझाता हुआ) मगर बापू ! नई शिक्षा···नई धारायें··· विकास···मतलब-यह कि मानसिक, बौद्धिक तथा अन्य क्षेत्रों में तो पुराने ढर्रे की शिक्षा से···आज...काम···चलने का नहीं।

नाथूराम—(दृढ़ता से) यह तो ठीक है कि मैं···आज के नये ज़माने का पिता हूं···क्योंकि नये ज़माने के ख़ास ठेकेदार 'पिरथी' ! और 'काशी' ! का पिता हूं। लेकिन···(गुस्सा उभड़ता है) और कहीं मुझमें भी नई क्रान्ति कारिणी आग भड़क उठी··· तो फिर समझ लो···। (जमा जमा कर) ऐसा–न–हो··· इसी में आप लोगों की भलाई है।

पारबती—(बीच में) बड़े बाबू, मेरा हिसाब कर दिया जाय। मैं इस घर में एक मिनट भी नहीं रहूंगी (अपने आप उंगलियों पर गिनते हुए) नौ···प्याला···चाय !!

नाथूराम—(एक दम बदल कर मुलायमियत से) तुम-तुम को क्या हुआ ? अरे भाई ! तुमको क्या कुछ कहा गया !! (अलग) यह सुनयना वैद्य के यहां से कब आयेंगी ! जाकर देखना पिरथी ! जाओ पारबती जाओ, चाय-कोई पी लेगा। चलो ! हमी पी लेंगे।

[नीचे से कोई पुकारता है—'दमयन्ती चली गई क्या' ?)

नाथूराम—(नाराज़ होकर) दमन, दमयन्ती, कमल, माया, आशा, सब चले गये बाबा !! और डायरेक्टर पिरथी भी गये··· चले गये···अब तो जान छोड़ो।

पारबती—(धीरे धीरे आश्चर्य से चकित) बड़े बाबू···हमीं-पी-लेंगे। (उंगली पर गिनती हुई) नौ-प्याला-चाय—(ज़ोर से रो उठती है) हाय राम !!

(पटाक्षेप)

—❀०❀—

घरेलू इलाज

—:*:○:*:—

समय : सुबह नौ बजे

स्थान : नाथूराम के घर का कमरा

निर्देश :—

इसमें दृश्य परिवर्तन की कोई आवश्यकता है ही नहीं, यदि स्टेज को इस प्रकार तैयार किया जाय कि बांई ओर नाथूराम का कमरा हो, जिसके बीच में एक दरवाज़ा या परदा होना चाहिये जिसके दूसरी ओर घर का वह भाग दिख सके जहां पर दादाजी तथा पिरथी दवा तैयार कर रहे हैं। नाथूराम के कमरे के लिये स्टेज का ज्यादा भाग काम में लाया जाय, जब कि रसोई का केवल एक हिस्सा ही दर्शकों को दिखे। कमरे में चारपाई इस प्रकार रक्खी जाय कि कुछ मोढ़े आदि के लिये भी स्थान रहे। जब सब लोग आ जांय, तब यह ध्यान रखना होगा कि उनमें से कुछ बैठे और कुछ ही खड़े हों, नहीं तो भीड़ होने से सबके ठीक से न दिखने का अन्देशा है।

परबतिया का प्रवेश नाथूराम के कमरे में बाहर सामने की ओर से ही हो। केवल एक बार ही वह रसोई में दर्शकों को दिखे जब कि एक बर्तन उतार कर वह दूसरा चढ़ाने के लिये जाती है। बर्तन दोनों एक से ही हों। नाथूराम के कमरे में दो एक तस्वीरें, विवेकानन्द, महावीरजी, या महादेवजी की भी लगी हों; साथ ही साथ एक आध माला भी उन पर टंगा हो तो और अच्छा रहेगा। रसोई में चारों ओर सब सामान यानी चिमचा, चिमटा, चाकू, आदि, आदि हों; सब चमचमाते हुए। दादाजी के हाथों में लपेटा हुआ बड़ा सा कुंडली-नुमा कागज़ हो; जिसमें से पढ़ पढ़ कर काढ़ा तैयार कराया जा रहा है।

पात्र :—

नाथूराम	दादाजी
रानी	लोकनाथ
काशीबाई	कमला
पिरथी तथा,	पारबती

घरेलू इलाज

xxxxxxxxxx

[नाथूराम चारपाई पर लेटे हुए हैं। पास में उनकी बड़ी सलहज रानी बैठी हैं। बीच बीच में नाथूराम कांख भी उठते हैं सर पर आईस बैग रखा है]

रानी—अय! हाय!! तीन दिन में देखो चेहरा कैसा निकल आया है मानों सालों के बीमार हों। यही देखे न कोई कि…

नाथूराम—(एक सांस लेकर) क्या देखे भाभी कोई! जवानी के दिन भी तो अब बहुत पीछे छूट गये हैं। वर्ना मैं क्या समझता था ऐसी ईमारी बीमारी को! बहुत आईं और ज़ोर आज़मा कर चलती बनीं। हूं…(बेचैनी से) अख़बार अभी तक नहीं आया क्या?

रानी—जाने दो मुए अख़बार वख़वार को। बीमारीमें आंखों पर ज़ोर पड़ कर नाहक सर दर्द और गले पड़ेगा।

नाथूराम—क्या मुसीबत है, यह न करो, वह न करो, चलो मत, हिलो मत, खड़े न हो, बैठो मत! मैं पूछता हूं!! तब फिर आख़िर करो भी क्या? (बड़बड़ाते हुए) बीमारी न हुई सज़ा हो गई। (सर पर आइस बैग ठीक किया जाता है)

रानी—(गाल पर हाथ) अय ! हाय। नन्दोई जी, अब आज अगर अख़बार न पढ़ा तो ऐसा क्या बिगड़ जायेगा !

(कुछ देर खामोशी रहती है)

नाथू—काशी कहां है ?

रानी—अपने कमरे में कुछ ड्रामा-शामा तैयार कर रही है।

नाथूराम—ड्रामा ?

रानी—यह—हां। वही 'यूथ-फेस्टिवल' वाला।

नाथूराम—पारबती कहां है ?

रानी—वो कलमुंही, नई नौकरानी ?

नाथूराम—हां। हां !! (दबी आवाज़ में) भाभी इतने ज़ोर से मत बोला करो। कहीं सुन लेगी तो फौरन चली जायेगी। आज कल के नौकरों को ज़रा से में (अन्दर की ओर देख कर) जुकाम हो जाता है।

रानी—(बिगड़ कर) अयं ! नौकर क्यों मालिक कहो न ! क्या दिन हैं ! कुछ देर पहले कह रही थी 'आग लगे' मेरी आदत सुबह 'तड़के' चाय पीने की है 'देर से नहीं'···हुं।

नाथूराम—(जल्दी में) भाभी। देखो मैंने कहा ज़ोर से···। ज़ोर से नहीं ! यह दादाजी और पिरथी कर क्या रहे हैं रसोई में इतनी देर से ?

रानी—दवा बन रही है आपकी। काढ़ा।

नाथूराम—(शंकित स्वर में) कौन ! पिरथी बना रहा है! काढ़ा !!

रानी—बना रहे हैं दादाजी, और कम्पाउंडरी कर रहे हैं पिरथी।

नाथूराम—या भगवान ! तो आख़िर कितनी दवा बन रही है ?

(कुछ देर खामोशी रहती है। दूसरे कमरे से आवाज़ें उभरती हैं··· दिख तो रहा ही है)

दादा—(ज़ोर से) पिरथी ! मैंने कहा ज़रा आंखे खोल के देखो ! मिस्टर ! पानी (पढ़ते हुए) जलते जलते जब··· एक तिहाई रह जाय तब पीपल पड़नी है। न आगे और न पीछे।

पिरथी—(ज़ोर से) और कर क्या रहा हूं दादाजी !! आंखें फाड़ कर देखते देखते तो आंसुओं की धार बंध गई; और आप की शिकायत वैसी की वैसी ही बरक़रार है।

दादा—(ज़ोर से) यह फालतू बातों का समय नहीं है। देखो।

पिरथी—(वैसे ही) देख रहा हूं।

नाथूराम—(एक लम्बी सांस के साथ) भाभी ! यह आख़िर कौन सी हिकमत से बन रहा है काढ़ा ! और क्या मुझे पीना ही पड़ेगा ?

रानी—अय ! हाय ! नन्दोई जी ! कहते क्या हो ? पियोगे नहीं तो फिर होगा क्या ?

नाथूराम—हे दीनबन्धु ! पीना पड़ेगा !! मैंने कहा सुनयना अभी आई या नहीं ?

रानी—अभी कहां ? सुबह से उनके साथ परिक्रमा पर गई हैं। फिर मनौती तो करना है। (सांस लेकर ऊपर देखते हुए) उनके सुहाग को आंच न आये।

[कुछ बर्तन वगैरह गिरते हैं। दादाजी डांटते हैं। आवाज़े सुन पड़ रही हैं]

नाथूराम—(ज़ोर से) काशी—ऐ काशी !

रानी—(चिहुंक कर) अय ! हाय। नन्दोई जी। क्या गज़ब करते हो ! इतनी जोर से पुकार उठे !! नन्दजी आगई तो क्या कहेंगी ? मैं बुलाये देती हूं न ! (बुलाती है। बनावटी मीठे स्वर से) बेटा काशी !!

काशी—(अन्दर से) अभी आई मामी (नज़दीक आकर) इस वीरान, सुनसान, आस्मानी चूंदर से ढकी रात में मुझे किसने पुकारा !

नाथूराम—(चौंक कर) काशी बेटी ! मैं ··ने ! यह क्या कह रही हो तुम ?

काशी—(बे तकल्लुफी से) अपने ड्रामें का पार्ट याद कर रही हूं। अब दिन ही कितने रह गये हैं। मगर क्या खूब डायलॉग हैं—सुरमई बादलों के अंबार से मचल कर झांकता हुआ चांद झिझक कर झिलमिलाते सितारे—वाह।

रानी—अयं···कैसे हैं स्कूल कालेज !! पढ़ाई कम जब देखो 'ड्रामा' और जब देखो 'नाच'।

काशी—मामी। तुम समझोगी नहीं ! यह सब कुछ नवयुवक युवतियों के मानसिक विकास के लिये अति आवश्यक है। (एक लम्बी सांस लेकर) 'डियर मी' ! अब तुम पूछोगी कि 'मानसिक विकास' क्या है ?

नाथूराम—मेरा सिर !! मैंने तुझे इसलिये बुलाया था कि पारबती को सब कुछ ज़रा प्यार से समझा···दो···न !!

काशी—बता बता के मैं तो थक गई हूं ! (ड्रैमेटिक अन्दाज़ में) जी चाहता है कि इन तमाम मुश्किलों से भाग, इस पुराने खूसट आसमान से दूर···कहीं···और···जा···के···आबाद हो जाऊं !!

रानी—अय ! वाह री लड़की यह घर है या ठेठरवालों का अखाड़ा।

(पारबती पांव में पायजेब पहने हुए जाती है)

पारबती—बीबी जी।

काशी—जी पारबती जी।

पारबती—एक बात पूछूं ।

काशी—(बनावटी प्यार से)पू···छि···ये···न !!

पारबती—खाना तैयार हो जाने पर मुझे क्या कहना चहिये ? खाना तैयार है। खाना लगाऊं। या फिर वही पुरना हिसाब-जीमलें सरकार ।

काशी—(वैसे ही प्यार से) पहले तो खाना तैयार कर ले, फिर यदि कल का सा ही हाल हो, तो···यूं···कहना आकर···पारबती जी ! कि खाना···सत्या···नास हो गया···सरकार !!

पारबती—(रुआसी सी) मुझे कोई कुछ बताता ही नहीं। मैं क्या करूं यहां रह के ? मेरी इस घर में कोई जरूरत ही नहीं !

नाथूराम—(जल्दी से उठने का उपक्रम। घबराए हुए से) हैं···हैं···भई ज़रूरत है ! (डांट कर) ऐ काशी। (मुलायम स्वर में) तुम को सब कुछ सिखाया जायगा ! धीरे धीरे सब आ भी जायेगा। (बिगड़ कर) क्या फालतू बातें करती हो काशी !! ऐसी हंसी ठीक नहीं ! बैठे बिठाये हां !!

काशी—मगर मैं हंसी तो नहीं कर रही हूं।

नाथूराम—(डांट कर) जाओ जाकर ठीक से समझा दो। (मुलामियत से) जाओ पारबती ! जाओ ! काशी सब सिखा देगी !

काशी—(ड्रेमेटिक अंदाज़ में) इधर से आइये ! मलिका-ए-आलम ! रसोई का रास्ता इधर से है।

[जाती हैं]

राना—अय ! क्या नखरे हैं नौकरों के···क्या क्या चोंचले ! अय-हय !

नाथूराम—(चुप कराते हुए) चुप करो भाभी ! कान में भनक भी

पड़ी तो, भाभी ! अभी काफूर हो गई समझो। (दर्शकों की ओर) आजकल दोस्तों की कमी नहीं, पढे लिखों की कमी नहीं और न है समाज सेवकों की पर घर के नौकरों की…है एक नहीं, हज़ार बार। अब तो यह पोज़ीशन है कि एक बार भगवान मिल जांय…पर…भागे…नौकर नहीं !!

[एक सर्द आह निकलती है हाथ सर पर जाता है]

रानी—(घबड़ा कर) क्या हुआ नन्दोई जी।

नाथूराम—(वैसे ही) पता नहीं किस ने सिर में काट खाया।

रानी—हाय ! कितना जंगी मच्छर है। सर भी तो तुम्हारा सफाचट है–ईश्वर न करे (दर्शकों की ओर) यही तो बीमारी फैलाते हैं……(नाथूराम के थर्मामीटर लगाती है)

[दृश्य परिवर्तन, यदि स्टेज की व्यवस्था ऐसी न की जा सकी हो, जिसमें दूसरा कमरा भी दिख सके]

दादा—(आवाज़ उभरती है) दालचीनी तैयार है न ! जब मैं कहूं तो उसको चमचे से खूब चलाओ। हां !! खूब अच्छी तरह से ! क्या समझे ?

पिरथी—(दर्शकों की ओर) यही कि चमचा लिये मैं जाने कब से तैयार हूं। आपका आर्डर मिले भी तो !!

दादा—हां !!

पिरथी—(चमचा चलाने लगता है)

दादा—(रोकते हुए) नहीं, नहीं ! अभी नहीं !! सब चौपट कर दिया !

पिरथी—(हाथ रोक कर) मैं…ने चौपट कर दिया ? आप ही ने तो आर्डर दिया—'हां'। लो दादाजी अपने बस का तो यह रोग है नहीं !! मैं चला।

दादा—(चश्मा उठाते हुए) कहां चले ?

पिरथी—मोड़वाले डाक्टर के पास। एक पुड़िया में बापू ठीक हो जायेंगे। मैं आपके इस अमूल्य नुस्ख़े से बाज़ आया। इसका बनाना न हुआ, एक तिलस्म जीतना हो गया। ना बाबा !! ना !

दादा—यह नुस्खा मुझे यूं ही नहीं मिला—बाबू साहब ! दस साल गुरू की सेवा की है तब कहीं—हां ! क्या समझे ?

पिरथी—(सीटी बजा कर) दस···साल !! टाइम वेस्ट किया आपने सरासर !! दादाजी ! आजकल एक से एक गोलियां निकली हैं। पांच नये पैसे की लेकर खा लीजिये और वो गया मर्ज़। (चुटकी बजाता है)

दादा—'मर्ज़' नहीं—'मरीज़' ! दिल दिमाग और कलेजा सभी झुलसा देती हैं ये गोलियां हज़रत ! (सैनिक आदेश) चलो ! उठाओ चमचा !

पिरथी—अब कहां तक चमचा उठाये फिरें दादाजी ! आखिर कब बन कर तैयार होगा यह काढ़ा ?

दादा—(ज़ोर मारते हुए) एक खुराक में देखना बुखार ग़ायब। खांसी भी, और चेहरे पर—रंग फिर जाय तब कहना। (आर्डर) डालो दालचीनी और चलाओ तेज़ी से।

[चिमचा चलाया जाता है। ख़ूब चलाया जाता है]

दादा—अब काली मिर्च, सुहागा, काकड़ा-सींघी, शाही ज़ीरा, पीपल की छाल, मुनक्के डालो। एक एक कर। हाथ रुके नहीं।

पिरथी—(सब नाम गिना गिना कर डाले जाते हैं) और ये रहे मुनक्के।

दादा—काली मिर्च कितनी थी ?

पिरथी—तिरसठ।

दादा—मुनक्के ?

पिरथी—सत्ताईस नहीं अट्ठाईस।

दादा—ठीक ठीक बोलो ?

पिरथी—मालूम नहीं।

दादा—मालूम नहीं ? कहने को साइंस पढ़ते हो। मुनक्के नहीं याद हैं ? तुझसे अच्छी लड़कियां। (अन्दर की ओर पुकार कर) काशी !! (पिरथी से) जी हां आपसे कह रहा हूं।

पिरथी—(चिमचा पटक कर) मुझ से तो यह नहीं होगा। काशी ! ओ काशो !!

दादा—(दृढ़ता से) तुम, यहीं रहोगे। समझे !!

[नीचे का दरवाज़ा खटकता है]

नाथू—(दूर से) पिरथी—देखना भाई कौन है।

काशी—(घबड़ा कर देखती हुई) मैं देखती हूँ बापू। आप ज़ोर से न बोलिये।

पिरथी—अभी देखता हूं, बापू !

(लोकनाथ तथा उनकी बेटी कमल का प्रवेश। नमस्कार आदि होता है)

लोकनाथ—अरे भाई ! नाथूराम मैंने सुना तबियत खराब हो गई, क्यों ? कमज़ोर ज्यादा लग रहे हो। मौसम ख़राब है। पानी तो है ही खराब। हां बाहर तो नहीं सोये नाथूराम !

नाथूराम—छोड़ो भी ! मैंने ही कहा था कि आऊंगा पर देखो तो—चक्कर में आ ही गया। क्या बताऊं।

कमल—मैंने तो पापा से पहले ही कहा था कि 'अंकिल' आये नहीं। जरूर कोई बात है। वैसे ही ख़बर मिली कि आपकी तबियत... (चिन्तित सी) ज्यादा सीरियस तो नहीं ! (रानी की ओर देख कर) आन्टी कहां हैं ?

नाथूराम—नहीं बेटी ! 'सीरियस' 'वीरियस' क्या, मगर बीमारी तो बीमारी ही है। भाभी इनको पहिचानती हो न—अपने दोस्त लोकनाथ और यह है बेटी कमल। मेडिकल में पढ़ती है।

कमल—नमस्ते मामी, काशी ने बताया था।

रानी—नमस्ते (कमल से) अय हाय, बड़ी प्यारी बच्ची है (पुकारती हुई) काशी ! बेटा काशी ! देखना तो कौन आया है (कमल से) कैसी प्यारी बच्ची है !

काशी—(दूर से) आई मामी। एक मिनट में (आते हुए) नमस्कार चाचाजी ! कहो कमल ! क्या हाल है ?

कमल—हाल क्या–वही 'यूथ फेस्टिवल' का चक्कर। अबकी जम के कम्पीटीशन होगा।

काशी—ड्रामा कौनसा चुना है !

कमल—यह भी तो एक ड्रामा है···कि बावजूद तमाम एक्टिंग के अब तक चुनाव ही नहीं हो पाया। कोई ट्रेजेडी चाहता है–तो कोई 'कोमेडी' कोई 'बिना हीरो का' तो कोई 'बिना हिरोइन का' ? गरज़ ये कि (बात कट जाती है)

काशी—(ड्रामेटिक अन्दाज़ में) युंही युंही एक एक कर दिन, महीने, और बरस बीतते चले जायंगे। और फिर कहीं कुछ भी न रह जायेगा। वाह ! कमाल है !

दादा—(आते हुए) वैसे ड्रामे हमारे टाइम में होते थे। ऐसे ऐसे ड्रामें कि घड़ी में लोग हंसें और घड़ी में रोयें।

काशी—और हंसने की तो क्या ? पुराना ज़माना था। रोने की ही घड़ियां ज्यादा रहती होंगी दादाजी !!

[सब हंसते है]

लोकनाथ—बात यूं समझो ! कि ड्रामों में वह दिलचस्पी है ही कहां आज !! जो कि आपके ज़माने में थी। और यही वजह है कि हम इस ओर आगे बढ़ ही नहीं पा रहे हैं। और तो और……।

नाथूराम—आगे वागे बढना क्या…मैं तो कहता हूं…कि जमा पूंजी से भी गये ! बस…।

पिरथी—(अन्दर आ कर) आप लोग चाहे जो कहें ! अपन तो मानते नहीं !! एक से एक शोशल ड्रामा भरा पड़ा है, लदा है। देखें, सुनें, तो दांतों तले उंगली दबा लें। वाह !! क्या नाम है…काशी ! उसी का…जिसमें…मैं…हीरो था।

काशी—(ताली बजा कर) 'समाज के चोर' क्यों न भइया !

दादा—उसके हीरो आप खूब जंचे होंगे ? वैसे नाम…'काम चोर' तो नहीं था ? (डांटते हुए) जाइये…जाके देखिये…कि काढ़ा एक बटा छह हिस्सा रह गया या नहीं।

पिरथी—जाता हूं। (दोनों जाते हैं)

[पारबती आती है]

पारबती—बीबीजी ! यह अलुमूनियम के बर्तन काहे से साफ होंगे ? मिट्टी-राख से तो होते नहीं (अनखा कर) मेरे तो हाथों में दरद होने लगा।

काशी—तो सोडे से साफ कर लो न।

कमल—नहीं, मैं बताऊं, साबुन कपडे में लगा कर उससे साफ़ कर डालो। झकाझक चमकने लगेंगे।

रानी—अय ! वाह री लड़कियो। अलमूनियम के बर्तन ऐसे नहीं साफ होते ? यह सब करने से कुछ न होगा। (पारबती से) इधर सुन पारबती ! मैं बताऊं।

पारबती—हुकुम सरकार !

रानी—साबुन के टुकडे टुकड़े कर डाल और उसमें कुछ इमली और रीठे डाल के आग पर चढ़ा दे। बस दो उबाल आ जांय तो उससे साफ़ कर डाल। मगर हां उबाल खूब लेना।··· हंय। (जाती है)

लोकनाथ—(अलग) दवाई किसकी चल रही है नाथूराम !!

काशी—दादाजी की। वो भी चल नहीं रही है, अब चलेगी। अभी तो महज़ तीन घन्टे से वह आग पर उबल रही है।

पिरथी—(अन्दर आते हुए। हाथ पोछ रहे हैं) वैसे मां भी कुछ न कुछ कर ही रही हैं। सुबह से दोनों गणेशजी, गोविन्दजी शनीचर देवता बगैरह को मनौती के लिये जा चुकी हैं। इधर दादाजी के स्वयं अपने निर्देशन में काढ़ा बनाते बनाते अपना भी दम क़रीब क़रीब निकल ही चुका समझिये।

कमल—(थर्मामीटर देखती हुई) मगर मैं तो कहूंगी कि ऐसे में तो क़िसी डाक्टर की राय लेना ज्यादा ठीक है।

लोकनाथ—यही मैं भी कहूंगा। इसमें गफ़लत करना ठीक नहीं।

नाथूराम—वैसे मैं ही कौन आपकी राय से अलग हूं ! पर फिर सोचा कि (रुकते हुए) अब दादाजी का नुस्खा···।

दादा—(अंदर आते हुए) बस दवा तैयार समझो। एक खुराक में सारी ख़राबी दूर हो जायेगी। बस···पेट में पहुंचने की कसर है—बस चुटकी बजाते (अपनी धुन में) दवा करीब करीब तैयार ही है (कुछ ढूंढ़ रहे हैं। दूसरी ओर पारबती

आकर आग पर का वर्तन उतार कर दूसरा चढ़ा देती है। वर्तन वैसा ही है)

लोकनाथ—मगर दादाजी अगर कोई डाक्टर बुला—

दादा—(बातकाट कर) फ़ायदा हो !! यही चाहते हैं न आप लोग !! तो वही हो…। तो अब ज़िद काहे की ?

रानी—(बीच में समझाते हुए) अय हाय। इतनी मेहनत-से तैयार किया गया काढ़ा तो फिर पीना ही होगा। इसमें हर्ज़ ही क्या है ?

दादा—हर्ज़ यही, कि भूल से ही एक अक्लमंदी का काम न इन हज़रत से हो जायेगा !! डाक्टर पांच साल में पूरी डाक्टरी पढ़ पाते हैं !!

पिरथी—(बात काटता हुआ) यानी पांच साल में सैकड़ों हज़ारों नुस्खे ! और यहां दादाजी को पूरे दस साल की मेहनत के बाद कुल जमा एक नुस्खा प्राप्त हुआ है। बड़ा…बड़ा…असरीला होगा यह नुस्खा !!

काशी—वो भी कैसा…कि पूरे तीन घंटेमें डिस्पेन्स होकर तैयार हुआ है। यह नहीं कि यूं दिया नहीं…कि पट तैयार।

दादा—मैं कहता हूं जनाब! एक खुराक में ही चेहरा चमक उठेगा ! चमक !!

पिरथी—बापू ! अपना चेहरा तो दवा की तैयारी में ही चमक उठा है। (सब की ओर देखता है)

काशी—भैया चमका तो क्या कुछ झुलसा सा ज़रूर लगता है। क्यों मामी ?

पिरथी—(नाराज़ होकर) आप फ़िलहाल मेहरबानी कर के अपने ड्रामे में ही लगी रहिये !

कमल—कौनसा ड्रामा है तुम्हारा ! काशी !!

काशी—(पास जाकर) सीक्रेट ! बिल्कुल सीक्रेट (ड्रेमेटिक अन्दाज़ में) ये चांदसितारे ! यह उगते डूबते सूरज की नरम नरम किरणें ! यानी कि दुनियां की हर ख़ूबसूरती ! इन क्षणों की याद बराबर दिलाते रहेंगे। अलविदा।

कमल—(ताली बजा कर) हियर...हियर...भई बड़ी ज़ोरदार चीज़ है। मगर नाम क्या है ?

पिरथी—(शरारत से) मैं बताऊं ?

दादा—(बीच में) आप जाकर काढ़ा ले आइये। फ़ौरन। कटोरी ढककर लाना। किसी तरह उसकी भाप या ख़ूशबू उड़ने न पाये। नहीं तो असर आधा रह जायेगा।

लोकनाथ—नाथूराम भाई ! कभी कभी यह दवाइयां फ़ायदा ख़ूब करती हैं।

नाथूराम—बात यह भी है...कि इतनी मेहनत से बनी है...अब तो सेवन करना ही है, (दर्शकों की ओर) वैसे तेज़ चीज़...पूरी-हिम्मत नहीं पड़ती।

कमल—मुझे जाने क्यों इस तरह की चीज़ों पर ज़रा भी यकीन नहीं।

दादा—(बिगड़े स्वर में) डाक्टरी पढ़ रही हो न ! इन पर यकीन आने लगा तो फिर अपनी बे सिर पैर की फालतू अंग्रेजी दवाइयां क्या करोगी ? मगर कमली ! डाक्टर ! जादू का सा असर तुम अभी देखोगी ! ज़रा ठहर भी जाओ... (पुकार कर) पिरथी ! लओ जल्दी।

पिरथी—(दूर से) लाया दादाजी ! लाया।

लोकनाथ—(दार्शनिकता से) ठीक ही तो है कि—ज़िन्दगी ड्रामा ही हैं। हर घड़ी ड्रामा ही ड्रामा...और कुछ होता ही क्या है ? हमी सब हीरो हैं...हीरोइन हैं।

नाथूराम—(बात काट कर) अमर शहीद...भी तो कहो मेरे यार ! (नेपथ्य में देखकर) दवा आ रही है।

पिरथी—(आता हुआ) ले आया बापू! अब आज्ञा करें, कैसे क्या हो।

नाथूराम—ज़रा देख तो लूं, रंग कैसा है ?

दादा—(जल्दी से, बीच ही में) नहीं·· नहीं इसे खोलो मूंदो मत। भगवान का नाम लेकर पी जाओ। बस सब दुख दूर हो जायेंगे। लो भगवान का नाम !

नाथूराम—और कर ही क्या रहा हूं ! भगवान का नाम ही तो ले रहा हूं !

लोकनाथ—धीरज धरो ! नाथूराम !

काशी—कुछ सोचने बिचारने का काम नहीं है, अब।

पिरथी—मेरे हाथ दुख रहे हैं बापू ! कितनी मेहनत से तैयार हुई है यह अक्सीर दवा !! फौरन असर करेगी।

कमल—(शंकित भाव से) अंकिल। कम से कम ज़रा चख कर देख लेना ठीक होगा।

रानी—अय ! हाय, बेटी जब सभी पीना ही है तो चखना क्या ? कहीं कोई दवा भी चखता है ? लो भगवान का नाम !!

नाथूराम—लोकनाथ तुम मेरा सर पकड़ लो ! और काशी तुम मेरा हाथ।

दादा—क्यों ? क्यों ? यह क्या तमाशा है।

नाथूराम—(गुस्से से) तमाशा ! नहीं मुझे 'गुस्सा' आ रहा है कि कहीं मैं इस दवा को फेंक न दूं।

दादा—(समझाते हुए) सवाद...बुरा नहीं होगा...नाथूराम !!

पिरथी—निरे मुनक्के और बताशे पड़े हैं।

दादा—(पुचकार कर) लो...पियो तो !!

लोकनाथ—पी जाओ...दम साध कर...और आंख बन्द कर।

(सब के सब एक साथ कह उठते हैं...सब ठीक है...सब ठीक है)

दादा—खुशी मन से पियो...तभी असर होगा...नाथूराम ! हां !!

नाथूराम—(डरते डरते) मैं पीने को तैयार हूं। मगर ज्यादा कड़वी तो न होगी ?

दादा—बिल्कुल नहीं...कौन कहता है ? हां !!

(दवा पिलायी जाती है। अस्फुट शब्द निकलते हैं। कटोरी दूर गिरती है जाकर। थूकते हैं बिस्तर से नीचे आ जाते हैं।)

नाथूराम—(दम घुटता हुआ सा) यह क्या है ? दवाई है (बड़ी पीड़ा से निगलता हुआ) कैसी दवा है !!!

पिरथी—क्या ?

दादा—दवा और क्या ?

काशी—यह भला कैसा नाटक है ?

नाथूराम—(नाराज़ होकर) मुझे मार डालने पर सब तुले हो ? यह दवा कैसी है (थूकता है)

(पारबती रोते रोते आती है)

पारबती—यह कैसा घर है !! कोई चीज अपनी जगह पर रह ही नहीं पाती।

काशी—(जल्दी से) क्या हुआ ?

रानी—(वैसे ही) क्या हो गया···अब !! अय-हय-बोल भी तो कुछ !!

पारबती—मैं ने चूल्हे पर अभी साबुन रीठा, और इमली चढ़ाया था...अब नहीं है।

नाथूराम—(चिल्ला कर और थूकता हुआ) क्या कहा यानी कि...

लोकनाथ—पिरथी...क्या गोलमाल !

कमल—मैं ने कहा था...पहले चख कर देख लो।

(सब चीख़ पुकार मचाते हैं)

पिरथी—(बिगड़ता हुआ) क्यों चढ़ाया था...चूल्हे पर...बिना...पूछे...एक ही से बर्तन में !! इसको ...इसके...।

काशी—निकाल दो।

पिरथी—भगा दो।

दादा—गोली मार दो।

नाथूराम—(कष्ट के साथ) अरे नहीं...ऐसा नहीं। पारबती !!...वह मैं भूल...से...पी...गया। तू...और...चढ़ा...दे। जा...भाई...जा।

(जाती है रोती हुई। सब आपस में एक दूसरे को दोष देने की फिराक़ में हैं। बातें चल रही हैं)

नाथूराम—मैं ने कहा न...कि गया नौकर तो आसानी से मिलता नहीं।

दादा—पिरथी ! आंख नहीं है क्या ?

पिरथी—आंख एक नहीं दो हैं पर मैं क्या करूं...यह पारबतिया !!

रानी—अयं...दादाजी ! तो लड़के का इसमें क्या कुसूर था !!

दादा—कोई बात नहीं, पिरथी ! चलो। जाओ...जाकर ले आओ दवाई।

नाथूराम—(ज़ोर से) नहीं...बस...। भर पाया...अब और नहीं।

कमल—मैं कहती हूं डाक्टर बुलाओ।

लोकनाथ—(बड़े दुःख से बिस्तरे पर चढ़ने का प्रयत्न करते हुए) हां...भाई...यही ठीक होगा...साबुन, रीठा और क्या कहते...इमली...बंडल हो गया।

काशी—यह तो सरासर ट्रेजेडी पर ट्रेजेडी होती जा रही है।

रानी—अय ! हय। यह आखिर है क्या सब !!

नाथूराम—पागलपन। सरासर पागलपन। मैं बीमारी से बाज़ आया...भाई...अब कभी नाम न लूंगा बीमारी का...चाहे जान ही चली जाय।

(पटाक्षेप)

—:*:०:*:—

बाल मनोविज्ञान

—:o:❋:o:❋:o:—

समय : सुबह आठ बजे

स्थान : नाथूराम का कमरा

निर्देश :—

सामने बरामदा जिसके पीछे खुला हुआ दरवाज़ा तथा कमरे की दो खिड़कियां दीखती हैं। नाथूराम दरवाज़े से दीवार पर कील ठोकते हुए दीखते हैं। सुनयना के आने पर वह बाहर बरामदे में आ जाते हैं। कमरे के दरवाज़े से एक मेज़ दिखाई देती है तथा दो एक तस्वीरें आदि भी जो दीवार पर लगी हैं। बरामदे में एक ओर दीवार पर टंगे हुए मरदाने कपड़े तथा पास की ही अलगनी पर कुछ जनानी साड़ियां, कोने में रक्खी हुई चटाइयां, चार छः मोढ़े तथा एक छोटी चौकोर मेज़, बांई ओर एक छोटा सा तख्त भी, जिस पर गाव तकिया पड़ा है। दरवाज़ा ऐसा हो कि जिसमें से होकर सुनयना

तथा मालती जलपान का सामान तैयार करती तथा बातें करती दिखलाई दे सकें। अचल तोड़ फोड़ वगैरह भी कमरे के अन्दर ही अधिक करता है।

पात्र :—

नाथूराम

सुनयना

काशीबाई

पिरथी

दादाजी

लोकनाथ

मालती

कमल तथा

अचल

—:❀:०:❀:—

बाल मनोविज्ञान

(दीवाल पर कील गाड़ने की आवज़ और साथ ही साथ नाथूराम गुनगुनाते हुए कुछ गाते हैं)

नाथूराम—(गुनगुनाते हुए) मैंने कहा ! कहां हो पिरथी की मां !! (फिर गुनगुनाता है) अरे कहां हो ! भाई !! वक्त की बात है--(गाता है 'हम उनको भूल जायें'–वगैरह) इतवार का यह शान्ति पूर्ण दिन—और नाथूराम—'तुम पुकारा किये' किसी ने सुना ही नहीं ! (एक सांस लेकर) अजी ओ सुनयना ! रानी !! जी !! (दीवाल में कील ठोकता है)

सुनयना—(आते हुए) कुछ कहो भी तो सही !! मैंने तुम से जाने कितनी बेर कह छोड़ा है कि तुम तो थेटेर कम्पनी में दाख़िल हो जाओ, तालियां बजाते बजाते लोगों के हाथों में छाले न पड़ जांय तो मुझसे कहना ?

नाथूराम—भाई···हियर ! हियर !! खूब ! मगर यह भी सोचो कि तुम सी हीरोइन भी तो चाहिये !! तो सुनो पहले तुम... और फिर पीछे···पीछे···मैं; क्यों ?

[गुनगुनाता है]

सुनयना—फिर वह गाना···। आखिर ऐसी भी क्या ज़रूरत है गाने की !! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

नाथूराम—(चमक कर) ज़रूरी है कि कुछ कहे ही। (धीरे धीरे) सुनयना ! ये बरसात ! ये समां ! ये नन्हीं नन्हीं बिखरती मचलती फुहारें···और···तुम···! क्या कहती हो ? क्या कहती हो ! बन्द कर दो यह गाना !! च···च···च। मैं ऐसा भी क्या बूढ़ा हो गया !! सुनो, ऐसा नहीं किया करते···हां !

सुनयना—यह कील लिये इस दीवाल पर से उस दीवाल में ठोंकते घंटा भर होने को आया...मैं जानती हूं···तब तक चैन न आयेगा···जब तक यह बाप दादों की बनवाई हुई दीवार··· ढह न जायेगी !

नाथूराम—(कील और ज़ोर से गड़ाते हुए) पुख्ता मकान है ! पुख्ता ! क्या मजाल कि कहीं पर कील की भी जगह निकल आये (गा उठता है)

सुनयना—(घूंघट ठीक करते हुए) कोई सुने तो क्या कहे भला !!

नाथूराम—(हाथ रोक कर) सुने तो ! तो क्या करें ? पानी बरसना रूकवा दें, बरसात लौटवा दें और आज से अब आगे फिर कभी इतवार ना आने की मुनादी भी करादें !! क्यों रानी ! (हंसता है) इतवार है···अब आज मैं चैन से आराम करूंगा। न टंटा न फिसाद–न आना न जाना। न दोस्त न······।

[नीचे से दरवाज़ा खटकता है]

सुनयना—(सशंक) कौन है ? ज़रा देखना तो।

नाथूराम—(देख कर जल्दी जल्दी) अरे लोकनाथ हैं···सपरिवार ! सुनो ! मैं बताना भूल गया था···कि यह मेरे पुराने साथी-अभी हाल ही में यहां बदली पर आये हैं। अभी कल ही तो···यहां आने को कह रहे थे।

[दरवाज़ा फिर खटकता है]

नाथूराम—(ज़ोर से) आया ! भाई आया !!

सुनयना—मगर ज़रा पहले बता दिया होता !!

नाथूराम—(जल्दी जल्दी) तो यहां कब पता था ! कि कल चर्चा हुई, और आज आ ही धमकेंगे। फिर मैंने तो घर का पता भी—खैर कुछ खाने पीने…यानी…चाय-पानी का इन्त-ज़ाम……।

[अरे नाथूराम जी ! दरवाज़ा फिर खटकता है]

नाथूराम—यह काशीबाई कहां है ! मैं चला कुंडी खोलने।

सुनयना—(खीझकर) तो जाइये न। कि केसरिया वस्त्र और तल-वार ही बंधवाने की सोच रहे हैं…आप !!

नाथूराम—मैं जा रहा हूं। (खिन्न मन) सारा इतवार गया।

[दरवाज़ा खटकता है]

सुनयना—(बनावटी स्वर में) जाओ स्वामी। अब जाओ भी। नहीं तो दुश्मन दरवाज़ा जरूर तोड़ डालेंगे !!

[दरवाज़ा ज़ोर से खटकता है-कुछ समय बाद आवाजें फिर ऊपर उभरती हैं। लोग अन्दर आते हैं, परस्पर अभिवादन होते हैं]

सुनयना—आप लोगों को पहुंचने में मुश्किल ज़रूर हुई होगी।

मालती—जी नहीं। जी…जी, बस चले…और सीधे ही आ पहुंचे।

कमल—पापा ने तो कमाल कर दिया ! कमाल !! कुछ न पूछो अंकिल, ऐन दरवाज़े पर लाकर तांगा रुकवाया। और कहा ये रहा तुम्हारे अंकिल का मकान। देखती नहीं हो यह खुली हुई चौड़ी नाली।

लोकनाथ—(खांसते हुए) भाई वाह—क्या मकान बनाया है ? खूब लम्बा चौड़ा…और साथ ही साथ–हैं–हैं–कमल की मां ? कैसा ढूंढ़ा…हां–मैंने कहा था…न…कि मुझसे क्या छुपा है ! इस शहर में (सांस लेता है)

नाथूराम—सो-तो-है-ही ! मैं तो यही कह रहा था…कि आज तो आप लोग…।

सुनयना—(बात काट कर) यह तो…सुबह से ही…कह रहे थे…कि कि मैं जाकर लोकनाथ जी को ले ही आऊंगा (मालती से) हां मालती बहन ! ऐन सबेरे से ही रट लगा दी…रट…मगर बादी के मारे बुरा हाल है।

कमल—(आंख चढ़ाका) ऐन सुबह से। सच…अंकिल ! देखा पापा ! मैं कहती थी (अचल भीतर की ओर जा रहा है) अरे अचल ! उधर कहां जा रहे हो !!

सुनयना—सभी जानते हैं इनको,…किसी से पूछ भर लो…पीपल के ऐन नीचे वाला मकान चट बता देगा !! इधर बैठो न भाई ! यह खड़े कब तक रहोगे ?

नाथूराम—जी हां ! बैठिये न !! इधर आना भाई लोकनाथ। इधर आओ ! (बैठते हुए) बहुत दिन बाद मिले हो। आठ दस साल हो गये-जब अपन पिछले बार मिले थे।

सुनयना—(पुकार कर) अरे काशी बाई ! कहां है !! ज़रा इधर आ बेटी ! देख तो कौन आया है !!

काशी—(दूसरे कमरे से) आई मां ! आई ! बस एक मिनट में।

सुनयना—दिन भर किताब–रात भर किताब–पढ़ते पढ़ते बुरा हाल है। मैं तो कहती हूं कि ऐसा भी पढ़ना लिखना क्या !! कि बचपन में ही चश्मा चढ़ जाय !!

मालती—(स्वर में स्वर मिला कर) कुछ न पूछो जीजी ! अपनी

कमल है न ! इस साल डाक्टरी क्या पढ़ रही है जब देखो तब किताब से ही उलझी रहती है। और कालिज में जाने कितने…(कमल से) अरी बताती क्यों नहीं…मुझे तो घिन आती है…घिन।

कमल—(संकोच के साथ) आंटी ! 'फ्राग्स' के बारे में कहती हैं। उनको चीरना-फाड़ना, 'डिसेक्शन' करना पड़ता है न !!

सुनयना—(घृणा से) हे राम ! यह तो बुरा काम है बेटी। (कुछ सोच कर) घर आके कपड़े बदल डाला कर ! हां !!

अचल—(टोकता हुआ) मां…मां।

लोकनाथ—क्यों ? अभी से परेशानी हो गई ? आगे चल कर मुरदे चीरने फाड़ने पड़ेंगे-तब ! (हंसता है) क्या होगा !!

सुनयना—(आश्चर्य से) यानी सच्ची मुच्ची के !!

अचल—मां-मां-मां !! मां !!!

काशीबाई—(आते हुये) नमस्ते-नमस्ते। अरे ! हल्लो-कमल ! क्यों मिस्टर, यह चांद आज कहां ? वह भी सबेर सबेर ! क्यों, कैसी हो ?

अचल—(ज़ोर से) मां।

मालती—(झिड़क कर) क्या कहते हो-अचल !!

अचल—ऐसे ही कहूं ? या कान में ?

[सब हंसते हैं]

नाथूराम—(प्यार से) क्या बात है बेटा ?

सुनयना—(वैसे ही) कहो न ! क्या चाहिये अचल ?

अचल—मां ने कहा है-दूसरे के यहां-कुछ कहना हो…तो…कान में कहा…करो।

मालती—अरे बता भी न ?

काशी—(फुसलाते हुए) मेरा राजा ! भइया !!

कमल—(ज़रा नाराजी से) कहता क्यों नहीं ?

अचल—(धीरे से) मुझे भूख लगी है।

सुनयना—(तत्परता से) अभी लाई, अरे देखना तो...अभी लाई बेटा !!

[जाने का उपक्रम करती है]

मालती—(टोक कर) क्या ज़रूरत है ! अभी अभी खिला कर लाई हूं। कल बुखार आ गया था।

अचल—(बीच में ज़ोर से) मां, तू···कहती·· है···झूठ बोलना··· पाप है। घर पर कहां खाया था ? तुमने ही···तो···कहा था···कि अंकिल के यहां···।

मालती—(चकरा कर झिड़कते हुए) चुप रह ! झूठा ! कहीं···का !!

लोकनाथ—नहीं···भई···यूं···नहीं···डांटना चाहिये ! मनोविज्ञान में इसको···

[बात कट जाती है]

सुनयना—तो क्या हुआ ? घर ही तो है। भूख तो बच्चों की आंख में होती है।

मालती—मैं चल कर ठीक कराये देती हूं।

सुनयना—(रोकती है) अरे नहीं भाई !! मैं अभी आई। तुम बैठो तो जरा !

मालती—बैठूं क्या ? कौन मेहमान हूं।!

[दोनों जाती हैं]

लोकनाथ—(अख़बार हटाते हुए) मगर भाई ! इन रूसवालों ने क्या

रंग खिलाया है...कि सब देखते ही रह गये। हाथ ही नहीं रखने देते मेरे यार! कोई डार···डार···तो ये पात...पात। एक चाल जब तक कोई समझे, कि चट पूरी चौसर मय गोटों के बदल देते हैं। ही-ही-ही-ही।

नाथूराम—(जानकारी के साथ) अमरीका को भी कम न समझना लोकनाथ! भाई जानते हो न-कि ज़माना है 'टके' का··· और इससे सब कुछ ख़रीदा जा सकता है···तुम्हारी चौसर मय गोटों के!!

अचल—(पास आकर) बाबूजी!!

लोकनाथ—हां बेटा!

अचल—मैं यह कील···।

लोकनाथ—(समझा कर) नहीं बेटा! ऐसा नहीं करते! (नाथूराम से) तो मैं कह रहा था कि रूस का काम करने का ढंग ही निराला है। उसके अंदाज़ को समझना...(बात कटती है)

अचल—बाबूजी!

लोकनाथ—हां बेटा।

अचल—मैं यह कील...

लोकनाथ—(बात काट कर) नहीं बेटा! कील नहीं गड़ाना चाहिये।

अचल—तब यह है किसलिये?

लोकनाथ—बेटा! ऐसा नहीं करते! (नाथूराम से) तो मैंने कहा···

नाथूराम—(चश्मा उतारते हुए) कुछ भी कहो...लोकनाथ! पर यह न भूलना...कि अमरीका भी···कील कांटे से दुरुस्त है।

अचल—(ज़ोर से) मैं यह कील...।

लोकनाथ—(ज़ोर से) नहीं बेटा!! नहीं!! नहीं! नहीं!!

नथूराम—अरे...ले लेने दीजिये न! मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों को बहुत टोकना ठीक नहीं। लो...बेटे लो...।

अचल—और हथौड़ी?

नाथूराम—हथौड़ी? अच्छा ये भी लो। जाओ अब खेलो जाकर (लोकनाथ से) बिना रुपयों के राजनीति भी नहीं चलती-लोकनाथ। इस क्षेत्र में तो निरा पैसा चाहिये...खूब पैसा... उसी के खेल तमाशे हैं-सब।

काशी—(अंगड़ाई लेते हुए) यूं बोर होने से, तो मैं कहती हूं, आज पिक्चर न चला जाय, बापू! क्यों कमल कैसी राय है?

कमल—(हाथ की उङ्गलियां चिटखाते हुए) आई हैव नो ओबजैक्शन।

नाथूराम (बड़बड़ाते हुए) इतवार का दिन...आराम का होता है, न कि परेशानी का। यह भी क्या कि घड़ी दो घड़ी को भी चैन न मिले?

[अचल दीवाल पर कील गाड़ने का प्रयत्न कर रहा है]

काशी—सिली। यानी...पिक्चर देखने में भी कोई परेशानी होने की गुंजाइश है! बापू यह मैंने आज ही सुना।

कमल—काशी! भाई मैं तो अंग्रेजी पिक्चर ही पसन्द करूंगी।

लोकनाथ—(रोक कर) अंग्रेजी पिक्चरों में ऐसी क्या खूबी है? क्या धरा है?

नाथूराम—मगर भाई! अपनी हिन्दी पिक्चरें कोई कोई...बस... कमाल ही समझो।

काशी—कोई कोई ही न! सब तो नहीं!!

कमल—(लापरवाही से) ज्यादातर! बस यूं ही बेकार होती है।

[अचल तस्वीर का शीशा तोड़ देता है]

लोकनाथ—(चिहुंक कर) क्या किया !! अरे तस्वीर का शीशा तोड़ दिया ! राम राम ।

नाथू—(बीचमें) कोई बात नहीं । कोई बात...बेटे चोट तो नहीं आई ! काशी शीशे बटोर कर फेंक दो संभाल के (शीशा हटाने की आवाज़) यह हथौड़ी मुझे देना तो अचल !

अचल—(दृढ़ता से) मैं नहीं दूंगा । इससे हम बाजा बजायेंगे ।

लोकनाथ—(घबड़ा कर रोकता हुआ) नहीं अचल ! हथौड़ी से बाजा नहीं बजाया जाता । ऐसा नहीं करते ।

कमल—हथौड़ी से कहीं बाजा बजाया जाता है ?

नाथूराम—(बेबसी से) बच्चे हैं । कोई बात नहीं ।

लोकनाथ—(डांट कर) जाओ जाकर खेलो । (दरवाज़ा खटकता है)

नाथूराम—(ज़ोर से) अभी आया भाई ।

[नीचे से दादाजी तथा पिरथी ऊपर आते हैं]

दादा—क्या कहा मिस्टर ! यह भी कोई खेल है वह गोल बचा लेना ! यानी के वह गोल बचा लेता ? गोल कीपर को आपने क्या कोई गोलगप्पा समझ रक्खा है ? पिनाल्टी बुली के पास ऐसा साफ पास । वाह ! तबीयत फड़क उठी ! जीते रहो हज़ार बरस ! खेल समझो ! पिरथी ! खेल !

पिरथी—आपकी हर बात...लिहाज़ तेरा बुरा हो...समझना ही पड़ता है...दाजाजी ! वर्ना उसमें लॉजिक कोई नहीं...और न है सार । (ज़ोर देकर) गोल, सेन्ट परसेन्ट बचा सकता था वह, अब क्या करे ! जब पैर ही रपट जाय ।

दादा—(खीझ कर) मेरी मुर्गी की तीन टांग ! मिस्टर पिरथी ! दूध के दांत नहीं टूटे और मेरे मुंह लग रहे हैं आप ! जी हां !! (चारों ओर देख कर) भई वाह ! अच्छा !! बड़े

बड़े लोग आये हैं ! लोकनाथ ! अरे तुम्हारे तो क़रीब क़रीब सब बाल ही सफेद हो चले !! तुम कुछ शीर्षासन वगैरह किया करो न ! अरे यह कमली है न !!

कमल—नमस्ते।

दादा—नमस्ते। अहा-हा बड़ी होगई हो! इत्ती सी थीं तुम! हां !! वाह भाई वाह!

लोकनाथ—दर्शनों को आ गया था। आप भी दादाजी ज्यादा बुढ़ा गये हैं।

दादा—कौन ? मैं! अहा-हा-हा-मैं बूढ़ा नहीं आपकी आंखें यकीनन बुढ़ा गई हैं। जी हां, इसीसे यह उलट फेर लग रहा है। (नाराज़ी के स्वर में) अभी भी आधा घंटा सुबह में दौड़ लगाता हूं। शीर्षासन अलग। (कमल से) क्यों कमल! क्या करती हो आजकल ? अयं!

कमल—मेडिकल में पढ़ती हूं, दादाजी!

दादा—(हंसता है) अच्छा! तो कमली डाक्टर बनेगी! डाक्टर! ठीक है…बहुत ठीक है।

अचल—दीदी बड़े बड़े मेंढक मारती है।

दादा—(हंसता है) अच्छा। खूब अभी तो शुरू की बात है—आगे चल कर आदमी भी मारेगी। क्यों न डाक्टर साहब!

काशी—भला दादाजी आप डाक्टरों से इतना चिढ़ते क्यों हैं ?

दादा—मैं ? ना बाबा! चिढ़ता नहीं…डरता हूं। कौन जाने कब चीर फाड़ कर रख दें।

नाथूराम—कौन कहता है कि कोई चिढ़ता है ? किसी भी सभ्य कहलाने वाले देश में डाक्टरों की काफी संख्या में ज़रूरत है। अब अमरीका को ही लीजिये…

लोकनाथ—अमरीका! मैं कहता हूं...रूस को ले लीजिये...या फिर (बात कट जाती है)

पिरथी—'सॉरी फोर इन्टरप्शन' 'रूस' और 'अमरीका' दोनों को छोड़िये...'जापान' या चलिये...इंग्लैण्ड से ही मिलान कर देखिये न।

दादा—क्या देखिये! मैं पूछता हूं कि 'अमरीका', 'रूस', 'चीन', 'जापान' और 'इंग्लैण्ड' में क्या देखने की चीज़ डाक्टर ही रह गये हैं!! ज्यादा डाक्टरों के होने से एक बात तो साफ ही है, कि उन देशों में तन्दुरुस्त लोगों की कमी,...हिन्दुस्तान में आज ज़रूरत है (बात कटती है)

नाथूराम—मगर दादाजी!

पिरथी—आप समझे नहीं। मतलब यह...कि ज़रूरत (बात कटती है)

लोकनाथ—काहे की ज़रूरत है? दादाजी...रुक क्यों गये...आप!

दादा—(बिगड़ते हुए) इसलिये कि आप सब मेरी बात को बीच में काटने का पूरा मज़ा ले लें। हज़रात!! आज की हमारी ज़रूरत है...कसरत की...अखाडों की...और काहे की?

लोकनाथ—(चकित) कसरत की!!

नाथूराम (विस्मित) अखाड़े की! वह तो हैं ही।

पिरथी—(हंसता है) क्या आपने सलाह दी!! कि न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी। यानी कि सब होलिए तनदुरुस्त... फिर डाक्टरों की भला क्या ज़रूरत!!

काशी—दादाजी की...एक...एक...बात गांठ में बांध कर...आने वाली पुश्तों के लिये...सहेज...कर...रखने...की...ज़रूरत है।

अचल—बाबूजी!

लोकनाथ—हां बेटा!

अचल—कान में कहूं !

लोकनाथ—ऐसे ही कह दो न !

अचल—कह दूं ?

लोकनाथ—हां-हां ! कहो न !

अचल—(तिरछा देखते हुए) यह बूढ़ा कौन है ?

दादा—(हंसते हुए) बड़ा तेज़ बच्चा है। मैं तुम्हारे पापा का दादा हूं। (हंसता हैं) तुम्हारे पाप के कान में खींचा करता था। क्या समझे !!

अचल—पापाजी !

लोकनाथ—हां बेटा !

अचल—(बढ़ते हुए) मैं इस दादाजी की पीठ में कीला गड़ाऊंगा।

लोकनाथ—(रोकते हुए) अरे-रे-रे यह क्या ? ऐसा नहीं करते... अचल !! गन्दी बात। ख़बरदार !!

पिरथी—बच्चों को डांटना नहीं चाहिये आधुनिक मनोविज्ञान...।

काशी—...के अनुसार उनको किसी बात के करने से रोकना नहीं चाहिये !...

कमल—इसमें उनके मानसिक विकास की प्रगति मारी जाती है।

नाथूराम—(ज़ोर से) पिरथी !

पिरथी—हां बापू !

नाथूराम—इसको बाहर घुमाने ले जाओ। बाहर जाकर सड़क पर कुछ दिखा लाओ।

पिरथी—आओ अचल !

अचल—मैं नहीं आऊंगा जी।

पिरथी—अचल !

दादा—तुम मेरे पास आओ अचल ! इधर आओ। मैं बच्चों को खूब

समझता हूं। नाथूराम! लोकनाथ! बच्चों को ऐसे समझाना चाहिये। समझाना कोई हंसी मज़ाक नहीं। अब देखो मैं कैसे यह काम करता हूं।

नाथूराम—हां दादाजी! देख रहे हैं।

लोकनाथ—(शंकित) सो तो है ही। मगर ज़रा...।

दादा—अचल! मेरे बेटे! अच्छे लड़के! इधर तो आओ।

अचल—यस सर।

दादा—शाबास! तो राजा बेटे-अचल! तुम क्या चाहते हो? मैं तुमको उसे फौरन दे सकता हूं।

अचल—(शांति पूर्वक) मैं आपकी पीठ में कील गड़ाऊंगा।

दादा—(घबड़ा कर) पीठ···में...कील···मगर क्यों?

अचल—उस पर तस्वीर लगाने के लिये। (आगे बढ़ता है) लगाऊं?

दादा—(खांसते हुए) नहीं नहीं ऐसा तो नहीं किया जाता···काशी!

काशी—जी दादाजी, क्या लाऊं? ठंडा पानी।

दादा—(डांट कर) तुम चुप रहो (मुलायम स्वर में) अचल यह ठीक नहीं है और कुछ बताओ।

अचल—तब मैं आपकी ऐनक पर हथौड़ी मारूंगा।

[काशी पिरथी हंसते हैं]

दादा—पिरथी इसको बाहर घुमा लाओ (हड़बड़ाता है) यह आजकल के लड़के हैं। नाथूराम, यह सब ऐटम और हायड्रोजन बमों के दगाते रहने का असर है और कुछ नहीं।

(सुनयना और मालती अंदर आती हैं। हाथों में खाने पीने आदि का सामान है)

सुनयान—मेरे साथ साथ तुम भी परेशान हुईं। दम भर को ज़रा बैठना चाहिये।

मालती—अपनाघर है...फिर बैठने की खूब कही। कौन हाथ घिसे जा रहे हैं। ये इधर की मेज पर रख दूं।

सुनयना—हां-हां-रख दो न। मैं अभी आई।

अचल—(पीछे से आकर) ए दादाजी। गाडाऊं पीठ पर कील...

दादा—(उछल कर) अरे! नहीं...ऐसा नहीं करते। (घबराहट से) पिरथी!

[प्याले तश्तरी गिरते हैं टी पाट टूटता है]

मालती—(डांट कर) सत्यानाश कर दिया लड़के ने! क्यों रे अचल, क्या पागल हो गया है रे।

अचल—शिकारी हूं, केतली पर बनी चिड़िया का शिकार किया है मैंने।

लोकनाथ—(डांटते हुए) बड़ा शिकारी कहीं का। अभी ठीक करता हूं।

नाथूराम—(सांस लेकर) जाने भी दो बच्चे हैं।

दादा—(उफन कर) ये बच्चे हैं? शैतान हैं शैतान! (दर्शकों की ओर देख कर, रुकते हुए) मगर बच्चों को और बच्चों का मनो-विज्ञान मैं समझता हूं (ज़ोर से चौंक कर) अरे यह पत्थर किसने फेंका। आह, हा-पीठ टेढ़ी हो गई।

काशी—(जाते हुये) अरे कौन है! किसी ने सड़क से फेंका है।

पिरथी—(जाकर नीचे देखते हुये) कौन है कौन?

नाथूराम—कोई लड़का है।

लोकनाथ—(देखकर) अरे यह तो चंचल है, मेरा दूसरा लड़का (सोचता हुआ) इसको तो मैं घर में बन्द कर आया था।

कमल—(परेशानी से) कौन चंचल ! भला इसने दरवाज़े कैसे खोले होंगे। ज़रूर खिड़की तोड़ी होगी।

लोकनाथ—(हिचकते हुये) ज़रा शरारती ज्यादा है।

नाथूराम—(स्वगत) ज़रा-शरारती !! (अचल की ओर देख कर) ज्यादा है (प्रकट) कोई बात नहीं बच्चे हैं। (दूसरा पत्थर आता है) हाय राम।

दादा—(हड़बड़ी में) नाथूराम मैं चला। मुझे-जरा—मुझे चौपड़ तक जाना है।

(जाते हुये) बड़ा ज़रूरी ! अब आज आ न पाऊंगा। हां, अच्छा-राम-राम।

[तीसरा बड़ा पत्थर आता है, रक्खा हुआ शीशा टूटता है। सब परेशानी में एक दूसरे की ओर देखते हैं। एक पत्थर और आता है। बिजली वल्ब जाता है। सब चीखते पुकारते हैं)

(पर्दा गिरता है)

—❀०❀—

आई० ए० एस० के उम्मीदवार

—:*:०:*:—

समय : शाम के साढ़े छः बजे हैं

स्थान : नाथूराम के घर का कमरा

निर्देश :—

कमरे में सामने घड़ी लगी हुई है जिसमें साढ़े छः बजे हुए हैं। उम्मीदवार साहब एक चश्मा लगाये हुए सूट आदि से टंच, दो एक किताबें बगल में दबाये हुए कुछ घबड़ाये हुए से सुन रहे हैं। नाथूराम अपने गले में पड़े हुए एक तौलिया नुमा पटुके को दोनों हाथों से पकड़े हुए शिक्षा दे रहे हैं। यदि संभव हो तो स्टेज को पहले अंधेरा ही रक्खा जाय और लाइट केवल माधो फिर नाथूराम ही पर पड़े। सुनयना के आने पर दूसरी लाइटें काम में ली जा सकती हैं। अन्त भी ऐसा ही किया जाय कि पहले दूसरी लाइटों को हटा कर आर्कलाइट जाते हुए दादाजी पर रहे

फिर वह हट कर केवल माधो के खुले मुंह और घबड़ाई हुई मुद्रा पर आकर टिक जाय।

पात्र :—

नाथूराम

सुनयना

काशीबाई

पिरथी

दादाजी

माया, तथा

माधो।

आई० ए० एस० के उम्मीदवार

—:०:—

[नाथूराम अपने दोस्त के छोटे भाई माधो को समझा रहे हैं। माधो आने वाले आई० ए० एस० के उम्मीदवार हैं।]

नाथूराम—देखो बेटा माधो, तुम कोई मेरे लिये नये नहीं ! बच्चे से तुमको देखा है जब इधर भागते हुए नज़र आते थे।

माधो—हें—हीं—हीं।

नाथूराम—सत्त भाई—ईश्वर, उनकी आत्माको शांति दे···मेरे सबसे पुराने और जिगरी दोस्त थे। तुम जैसे उनके भाई···वैसे ही मुझको भी समझना। हमेशा हमेशा के लिये।

माधो—हां भाई साहब ! सो—तो–हें--हीं--हीं !

नाथूराम—(फटकार कर) तो मैं कहता हूं···कि एक एक चीज़··· रट कर फेंक दो। मुंह ज़बानी याद न हो तो बात ही क्या ! सबेरे उठ कर सारे अख़बार पढ़ डालो···मैं कहता हूं क्या !! रट डालो !

माधो—जी।

नाथूराम—ख़बरें सुनो। ख़बरों को समझो, ख़बरों की पृष्ठ भूमि में आये हुये स्थानों···नामों···कारनामों, बल्कि मैं तो कहूंगा कि इश्तहारों तक को न छोड़ो। कौन जाने कहां पर तुमको उस

कण के दर्शन हो जायं जो परीक्षक को भाया हो। क्यों! क्या समझे ?

माधो—हें-हीं-हीं!

नाथूराम—(नाराज़ होकर) अरे यह है क्या ? यह मैंनरिज्म सम्भालो बेटा माधो! नहीं तो ये…ले ही डूबेंगे…तुम्हे क्या कहते हैं…मैंने कहा…सुनती हो ?

सुनयना—(दूर से) सुन रही हूं। सब सुन रही हूं (झल्लाते हुए) अरे यह ताले हैं! लगता है कि शैतानके पंजे हैं…पंजे। बन्द हो गये तो बन्द ही हो गये (तेज़ी से आते हुए) मैं पूछती हूं…कि इस तरह के ताले क्यों खरीद कर यहां पर लाकर (पास आकर सामने फेंकते हुए) मेरे सर पर पटके जाते हैं !!

नाथूराम—आई (बिगड़ कर) यानी के (एक दम से नरम होकर) क्या हो गया तुमको पिरथी की मां ! (प्यार से समझा कर याद दिलाते हुए) ज़रा याद तो करो…तुम्हींने तो कहा था कि सस्ते हों…दो दो रुपये से ज्यादा के न हों। अब दो रुपये में तीन या चार लिवर से ऊपर का टिकाऊ ताला कहीं नहीं मिलने का। बताओ तो भला रानी !

सुनयना—(उफ़न कर) मैं नहीं जानती कि क्या होता है लिवर, विवर। हां अलबत्ता यह ज़रूर पता है मुझे कि यह घर नहीं, फालतू चीजों का गोदाम है—गोदाम।

नाथूराम—इस घर की मालकिन यह कह रही हैं! नहीं सुना माधो, तुम्हारी भाभी…तो…बस…कुछ न पूछो !!

सुनयना—(बीच में) माधो को क्या सुना रहे हो ? मालकिन ! इस कबाड़ी की दुकान की ? मेरे आंचल से चाभी बंधा कर मुझे रानी बताया जा रहा है !! (चाबी ताला फेंककर) ये रहा तुम्हारा लीवर। ईश्वर ही जानता है कि (पुकारती हुई) काशी! कहां है काशी (जाती है।)

नाथूराम—हें···हें...माधो! तुम्हारी भाभी बड़ी ही नेक स्वाभाव की हैं। अरे जैसे काले कीट में खिला हुआ कमल। समझने की बात है। (चौंक कर) देखो तो क्या इशारा किया है! माधो मिस्टर! जनरल नालेजमें कुछ भी पूछा जा सकता है आपसे। तुम्हारी भाभी ने बातों बातों में क्या सुझाया है...कि कुछ न पूछो! देखो, ताले के लिवर क्या होते हैं?

माधो—जी! हें···हीं···हीं···हीं···यह तो मालूम नहीं।

नाथूराम—(चौंककर) जी! (झुंझलाकर) मालूम तो खैर···आपको कुछ भी नहीं। मगर इशारा समझ करके तो उसको मालूम कीजिये न!! इम्तहान को मसालेदार छुंकी हुई कढ़ी न समझें माधो जी! उसे (उत्तेजित होकर) शत्रु समझकर...उसके पीछे जी तोड़कर जुटना पड़ेगा। तब कहीं कुछ बात बने शायद! जिधर आंख पड़े अपने आपसे पूछो—, 'जानते हो'? क्यों···कैसे!

माधो—जी!

नाथूराम—समझते हो?

माधो—जी!

नाथूराम—ऐसा क्यूं होता है?

माधो—जी...हीं...हीं...मालूम नहीं।

नाथूराम—(बिगड़कर पुकारता हुआ) पिरथी! मैंने कहा क्या कर रहे हो?

पिरथी—(दूर से) आया बापू अभी आया। पैन्ट में इस्तरी कर रहा हूं।

नाथूराम—(एकाएक खुश होकर) देखा।

माधो—जी!

नाथूराम—(पास आकर) क्या सुना?

माधो—(आते हुए हकला कर) जी! मैंने पिरथीकी आवाज़ सुनी।

नाथूराम—मुआफ़ कीजियेगा बाबू साहब…ज़रा अक्ल खर्चने की ज़रूरत है, अक्ल की! पिरथी क्या कर रहा है?

माधो—पिरथी—जी…हीं…हीं…बातें कर रहे हैं…

नाथूराम—(इशारे के साथ) जी नहीं…पतलूनमें इस्तरी कर रहे हैं।

माधो—(दबी ज़बान) जी मालूम…

नाथूराम—(बात काट कर) क्या मतलब…इसमें क्या बात है? अब आपका दिमाग यूं दौड़ना चाहिये। इस्तरी कैसे की जाती है? पेन्ट पर क्रीज कैसे बनती है?

माधो—क्या कहा भाई साहब…क्रीज कैसे बनती है? (दर्शकों की ओर) आखिर है क्या यह सब! मुझे इम्तहान आई० ए० एस० का देना है! न कि…धोबी गीरी का। भाई साहब कुछ तो सोचिये…जी! हीं…हीं…

नाथूराम—तुम नहीं समझे बच्चू। जनरल नालेज की बातें हैं…कुछ हंसी ठट्ठा नहीं। इसमें यह भी पूछा जा सकता है कि—भैंस के कितने दांत होते हैं? घोड़े के दांत और गाय के दांत में क्या अन्तर होता है?

माधो—(घबड़ाकर) भाई साहब आप…।

नाथूराम—(बात काट कर) नहीं, भाई साहब के दांत वह नहीं पूछेंगे। ये देखो (निकाल कर दिखाता हुआ) सब नकली हैं। नकली। ही-ही-ही पिरथी! (दांत लगा लेता है)।

पिरथी—(आते हुये) बापू आप मुझ से बड़े हैं। मेरे पिता हैं। मुझे आपका बड़ा आदर करना चाहिये। और मैं करता भी हूं। वैसे यह मेरा फ़र्ज है सभ्यताका तकाज़ा है…मगर— (बात कट जाती है)।

नाथूराम—(प्रकट) हियर हियर मेरे वफ़ादार पुत्र! तुम पर मैं नाज़

करता हूँ। (अलग) अब अगर यह लेक्चर काफी हो चुका हो, तो भाग कर मोड़ वाली दुकान से पाव भर जलेबी तो तौलवाते लाना।

पिरथी—(खुश होकर) तो यह कहा होता पहले ही। मैं समझा किसी दूसरी ही बात पर पेशी हो रही है। मैं तो यह कहने जा रहा था कि अपनी पैन्ट में ज़रा इस्तरी करलूं। (अलग) बापू आधा सेर हो जाये तो कैसा रहे। (प्रकट) मुझे आप पर फ़ख्र है कि आपने यह कर दिखाया कि पिता और पुत्र के बीच किस तरह दोस्ती का व्यवहार होना चाहिये।

नाथूराम—चवन्नी और लो भाई और चलते फिरते नज़र आओ। (जाते हुए पिरथी को रोक कर टोकते हुए) माधो चाचा को आज शाम म्यूज़ियम ले जाना होगा, आई० ए० एस० में बैठ रहे हैं।

पिरथी—(रुककर) अरे वाह माधो अंकिल…तब तो म्यूज़ियम ज़रूर…

माधो—जी ! हीं-हीं-हीं !

पिरथी—बहुत अच्छे, भई वाह। बापू इनको—(अलग) ज़िन्दा अजायबघर क्या ज्यादा ठीक नहीं होगा ?

नाथूराम—(खांस कर) तो माधो मैं यह कर रहा…(दूसरी तरफ) पिरथी ! चलते बनो…दस मिनट में वापिस आओ।

काशी—(अन्दर से चिल्लाते हुये) यह क्या जल रहा है ? किसी का कपड़ा जल रहा है ? अरे अरे यह तो इस्तरी जल रही है ! नहीं इस्तरी से कपड़ा जल रहा है। मां…। भइया…॥ बापू…

नाथूराम—(पुकार कर) पिरथी—जाकर पहले देखो कि यह कैसा शोर हो रहा है !

पिरथी—(गरम होकर) सत्यानाश हो गया बापू…यही तो मैं कह रहा था…कि एक काम पूरा होते न होते…दूसरे के बारे में बता देने से…बस ऐसा ही गोलमाल होता है…और क्या !!

काशी—(आते हुये) भइया ! अभी तो ऐसे कपड़ों की ईजाद ही नहीं पाई, कि जिन पर गर्म इस्तरी छोड़कर कोई गप्पें छांटनेमें लग जाय और वह जले नहीं।

पिरथी—(वैसे ही) मैं करूं क्या ! एक काम छोड़ कर दूसरा…और दूसरा छोड़ कर…तीसरा, इससे आग नहीं लेगेगी…कपड़े नहीं जलेंगे…तो और क्या होगा !!

नाथूराम—(समझाते हुये) जल गई पतलून तो जल जाय। क्यों परेशान होते हो ! माधो ! अब यह देखो ! कि आखिर पतलून जली तो जली कैसे ? सोचो तो !

माधो—(सोचते हुए) जी ! इस्तरी से…।

नाथूराम—नहीं, इस्तरी के ग़र्म होने से…मगर वह भी नहीं। फिर और सोचो !

सुनयना—(आते हुये) सरासर बेवकूफी से। मैं कहती हूं कि गरम कपड़ा है। बैठे बिठाये…पचास साठ की चपत लग गई। इनको कुछ समझाया क्यों नहीं जाता !!

नाथूराम—(धीरे से) समझा ही तो रहा हूं ! (तत्परता से) देखो माधो ! अब यह सोचना होगा कि आखिर पिरथी की पतलून कैसे 'जली'।

पिरथी और काशी—(दोनों) बापू। बापू मैंने कहा…

नाथूराम—(डांट कर) बीच में मत बोला करो…जल गई चीज़ तो जल जाय ! (सुनयना से) क्यों रानी ! (माधो से) तो बताओ कि कोई चीज़ जलती क्यों है (हंसकर) जनरल नालेज है…मज़ाक नहीं !

सुनयना—किस्मत फूटने पर या शनि की कुदृष्टि से। यह तो न हुआ कि जाकर देखते कि अच्छे-भले, बैठे-बिठाये कैसा लंका-कांड हो गया।

नाथूराम—(खीझते हुये) अरे तो अब तुम क्या चाहती हो ? उस पुरानी दो पैसे की पतलून के ज़रा सा…जल…जाने पर…मैं किसी की जान ले लूं ! बोलो !

काशी—(सकुचाते हुये) मगर बापू बात तो यह है कि ज़रा सी…

नाथूराम—ज़रा सी पतलून जल गई…जल जाने दो…जिन्दगी में जाने कितनी पतलूनें जल जाती हैं। पर इससे क्या ! अपने दिल पर नाहक कोई सदमा न लाना चाहिये। (उदार भाव से) बेटा पिरथी ! जलेबियां तीन पाव लेते आना…ये लो चवन्नी और।

पिरथी—(हिचकिचाता हुआ) मगर बापू ! मैने कहा कि…मैंने कहा कि…(लाचारी से) अब क्या कहूं। काशी तू ही क्यों नहीं कह देती !

नाथूराम—माधो ! यह तुम्हारा भतीजा भी खूब मज़ेदार लड़का है। (पिरथी से) क्यों मिस्टर ! जलेबी पूरी सेर भर मंगाना चाहते हो ! यह नहीं होगा (हंसते हुये) सेर भर उं-हूं ऐसा नहीं होगा। क्यों रानी ! भला देखो तो इन लड़कों को ! बड़े शरीर हैं।

काशी—(हकलाते हुए) मैंने कहा बापू ! मैंने कहा कि (पिरथी से) अब तू ही क्यों नहीं कहता भइया !

पिरथी—कहता हूं, कहता तो हूं (कंठ में कुछ अटकता सा है) यह कहता हूं…कि (विकृत स्वर में) बापू !

नाथूराम—(हंसते हुए) अरे दोनों मिल कर 'अटैक' करोगे। क्यों ? नहीं भाई यह नहीं होगा। अब चम्पत हो।

पिरथी—(प्रयास से) मगर बापू ! मैं तो यह कहना चाहता हूं…

नाथूराम—(हंसते हुए) क्या कहा, जाओ–जाओ–जाओ (सांस लेकर) बड़ा शैतान है।

[पिरथी जाता है]

हिब्ज़ ! बताइये तो भला केन्टन के दक्षिणी ओर समुद्र है या पहाड़ ? (हंसता है) गोल हैं आप। यह है भूगोल। जी हां !

सुनयना—जरा यह भी तो जान लें ! कि यह क्यों इस तरह चिल्ली-पुकार मचाने के बाद अब अचानक इतना खामोश हो गये हैं ! (तेज़ी से) कोई इनका भी दुख तो जान ले !

[माया जी आते हुए]

माया -मौसा जी ! बड़ा रो रहा था पिरथी। ऐसा रो रहा था··· ऐसा···कि कुछ न पूछिये। ज़ोर ज़ोर।

काशी—(आश्चर्य से) रो रहा था ! कौन भइया ? क्या कहते हो माया ?

सुनयना—हां-हां-पिरथी।

दादा—पिरथी रो रहा था ! नहीं तो ! जब मैं यहां आ रहा था तब वह दोने में से कुछ निकाल निकाल कर खा ज़रूर रहा था- वहीं पीपल वाले कुएं की जगत पर बैठा था।

माया—वह खा तो तब भी रहा था जब मैंने उसे देखा, पर रो भी रहा था। कहता था, अपराध हो गया है। इतना बड़ा कि कुछ न पूछो। रोता था-खाता था-और-रोता था-फिर और खाता था। दोने से निकाल निकाल कर।

काशी—हाय राम ! भइया सब जलेबियां खा ही डालेगा क्या। माया, तू ने उसे रोका नहीं ? कुछ भी नहीं कहा ?

माया—कहा कैसे नहीं बहिन, काशी ! मैंने कहा कि माया तेरा दुख बटाने को तैयार है। ला हाथ दे।

काशी—(व्यग्रता से) तो उसने क्या कहा !

माया—कहा हाथ में दोना है, दोने में जलेबी है दोना हाथ से छूट

नहीं सकता। इसलिए ठीक पन्द्रह मिनट बाद मिलना। वह रोया उसने और खाया और रोया।

काशी—(उतावली से) फिर आगे क्या हुआ···माया-जल्दी बताओ।

माया—क्या बताऊं बहिन, दुष्ट रोता रहा-हाथ दोने और मुंह तक जाते-जाते रहे, पर मुझे उसने पास न फटकने दिया, मैं उसे वहीं छोड़ कर यहां आ गया। (एक सांस लेकर बिल्कुल मायूस) 'नो होप्स सिस्टर'।

दादा—माधो जी! अब यह भी जानने की बात है···कि आखिर किस तरह जलेबियां बनती हैं?

माधो—जी–ख़मीर से।

दादा—खमीरा कैसे बनता है।

माधो—जी-ही-ही-ही...मालूम नहीं।

काशी—(दुखी आवाज़ में) हाथ आई जलेबियां भी कैसे निकल जाती हैं!!

माया—(लम्बी सांस लेकर) जी कैसे जलता है? मन कैसे जलता है?

सुनयना—(मुस्कुराते हुए) कोट कैसे जलता है।

नाथूराम—(एक सांस लेकर) आग लग गई कोट में, इसी घर के चिराग़ से।

दादा—यही सब जानने की बातें हैं। (हंसता है) मगर जुगराफिया ज़रूर पढ़ लेना। और साथ ही साथ हिस्ट्री...और क्या कहते हैं...कि ऐटामिक थ्योरी ज़रूर देख लेना।

काशी—स्वेज़ का मसाला···अफ्रीका की समस्या···गोआ का भविष्य ...नये प्रदेशों में यातायात···कोसाम्बी की जनसंख्या··· मथुरा के पेड़ों···में 'चीनी' और 'खोये' का 'परिमाण'।

माया—स्टेज के पर्दे कैसे रंगे जाते हैं। पत्तियां हरी और फूल रंग

बिरंगे क्यों होते हैं ? अदरख कड़वी क्यों होती है, नीबू खट्टा क्यों और नमक खारी क्यों होता है ? हड़का पानी कैसे बनता है ?

सुनयना—लालाजी ! आप तो यह सब छोड़कर...केवल यह देख लीजिये कि···गोटे में कितना सोना···फी···तोले और चांदी निकलती है, मसाले...गरम और...ठंडे कौन कौन होते हैं। बस···और तुम आई० ए० एस० में आये रक्खे हो।

माधो—भाई साहब ! जी···मैं–मैं–ही–ही–ही···

दादा—यह 'मैं', 'मैं' 'हीं–ही ही से नहीं चलेगा हज़रत ! सुबह रोज जुगराफिया पढ़ो जुगराफिया, और रात में हिस्ट्री। और इसके बाद जब कुछ मौका मिले तो 'जनरल नालेज'। भगवान को भी न भूलना ! परसाद परिक्रमा वगैरह का ख्याल रखना ! (जाते जाते) और कसरत भी रोज़—ज़रूर कुछ न कुछ हो जाय—हो !! तब बस बेड़ा पार समझो।

[माधो बेहोश होकर गिरते हैं। सब उनकी ओर क्या हुआ ? क्या हुआ...ग़रीब का सत्यानाश कर दिया आदि कहते हुए बढ़ते हैं]

(पर्दा गिरता है)

—:*:०:*:—

करिश्मा

समय : लगभग सुबह के छः बज रहे हैं

स्थान : नाथूराम के घर का एक कमरा

निर्देश :—

सामने बीच में तिपाई पर पानी की सुराही- जिस पर गिलास औंधाया हुआ है। कमरे में दोनों ओर दो छोटे तख्त हैं जिस पर दांई ओर पिरथी और बांई ओर काशीबाई सो रहे हैं। पिरथी के तख्त के पास खूंटियों पर उसके कपड़े टंगे हैं और रेक पर किताबें; ऐसे ही काशीबाई की तरफ वाले पर उसके कपड़े तथा किताबें। तख्त ज़रा सामने की ओर रहें जिसमें अन्य पात्रों के स्टेज पर आने से वो उनके पीछे न छिप जांय और संवाद बोलते समय सर उठाने पर देखे जा सकें। कमरा साधारण रूप से सजा हुआ हो, दो एक फिल्म स्टारों के चित्र, दो तीन कुर्सियां और कुछ खास नहीं।

पात्र :—

नाथूराम
सुनयना
काशीबाई
पिरथी
दादाजी

—:❀:०:❀:—

करिश्मा

xxxxxxxxxx

(बात आज सुबह ही की है। यूं, आज की सुबह हर किसी दूसरी सुबह की तरह ही थी। सारे काम वैसे ही शुरू हुए जैसे शुरू हुआ करते हैं। उनमें से कुछ पूरे हो गये, कुछ न हो सके और कुछ चलते ही रहे। मतलब यह कि आज की सुबह भी, पहले लगा कि वह उन तमाम सुबहों की तरह ही थी जिसमें कुछ ख़ास बात नहीं होती, कोई ऐसी बात, जिसके बारे में तमाम दिन हमारे आप के बीच चर्चा रहा करता है। ऐसी सुबहें जो कि लगता है कि केवल इस लिये होती हैं, कि हर रात के बाद ऐसा होना ही चाहिये, नहीं तो शायद लोग सोते के सोते रहें और उठें ही नहीं। जैसा कि कहा गया आज सुबह की घटना है। मुश्किल से छः बजने पाये होंगे कि :-

[कुंडी निचली मंज़िल में खड़काई जा रही है]

दादाजी—(नीचे से) पिरथी !, ऐ पिरथी ! मैंने कहा कि काशीबाई ! ऐ काशी बाई !! (यह आवाजें दबकर पिरथी की आवाज़ उभरती है)

पिरथी—(तकिये में मुंह लगाए हुये झुँझलाहट भरे स्वर में) मुर्गा बोले न बोले, दादाजी बोले तो फिर सुबह को तो होना ही पड़ेगा। क्या आवाज़ पाई है–पि-र–थी-एं-पिरथी !!

काशो—(उकताई आवाज़ में) जी ! यही नहीं-मेरा भी रोल कौल हो रहा है। (चिढ़ कर) काशी बाई !! चलो इसी बहाने वाराणसी पुरी का नाम सुबह सुबह लिये ले रहे हैं ! सुन रे बीर मेरे ! जा लपक कर किवाड़ खोल दे और ये भी कहते आइयो कि काशी बाई को सांप सूंघ गया, और…

सुनयना—(नीचे आते हुए) अरे किसे सांप सूंघ गया…जरा मैं भी तो सुनूं ! अरी वाह ! सुबह सुबह न राम-नाम, न राधेश्याम… ले देकर…बस…मुंह भरके…अशुभ नाम…काम।

काशी—तुम तो यूंही ज़रा ज़रा सी बात पर उलझ जाती हो मां ! अरे ! मैं क्या कह रही हूं ? सुनाई नहीं देता (सांकल ज़ोर से खटकती है) सुन लिया अब न…पूछना कि है कौन ?

सुनयना—अरी बावली लड़की ! चल उठ…किवाड़ खोल आ…जाके ! कब से दादाजी सड़क पर खड़े गला फाड़ रहे हैं ! अच्छे लड़के हैं-भाई वाह !

दानों साथ—हम सो रहे हैं !! नहीं…पढ़ रहे हैं !! (काशी) मैं पाठ कर रही हूं ! नीचे नहीं जा सकती। (पिरथी) कोई और जा कर खोल आये। (काशी) हां, कोई और जाके खोल आये।

सुनयना—हाय-हाय ! मेरे ज़ोड़ों में दर्द…रात भर टीसें मारता रहा…पल भर को आंख नहीं लगी और अब छत्तीस…सीढ़ी चढ़ उतर कर 'मैं' किवाड़ खोलने जाऊं ?

[बड़ी ज़ोर से सांकल खटकती है]

दादा—(ज़ोर से) दोपहर होने को आई और कोई जागने का नाम ही नहीं लेता ! पिरथी ! ऐ पिरथी !! नाथूराम जी !!! ऐ रावाजी…

नाथूराम—(नीचे जाते हुए) किसके जोड़ों में सबेरे सबेरे से टीस उठने लगी, ज़रा मैंने कहा…सुनो तो। अरे भाई…बाई का

प्रकोप है...बाई का। जाने कब से कहता हूं कि बस दो पैसे में यह सब ठीक हो...(बात कट जाती है)

सुनयना—(हाथ नचाते हुए) ले सुने कोई···मैं कहती हूं ··लेक्चर देने की साध पूरी करने के लिये पूरा दिन पड़ा है। हम घर के सुनने वाले भी ऐसे हैं निगोड़े कि कहीं भाग भी न सकेंगे। अभी फिलहाल कुंडी तो खोलते आओ! कोई–जाने कब से··· दादाजी बेचैन हो रहे हैं।

नाथूराम—सो तो जाना ही है। सुन ही रहा हूं। मगर यह पिरथी और काशी आज दम साधे क्यों पड़े हैं? (जाते जाते) ज़रा चूल्हा जला कर चाय रख देना।

[जाता है]

सुनयना—(बड़बड़ाती है) मिल गया आर्डर...ज़रा चूल्हा जलाकर चाय रख दो-इसमें कहने की क्या जरूरत थी। जैसे आज कोई नया काम हो। चूल्हा 'जलाते' और चाय रखते तो हाथ में घट्टे, और आंख में फूली पड़ गई है। (लड़कों से) अरे ऐ लड़को! उठो न! दादाजी आ रहे हैं।

काशी—सुन रहे हैं पिरथी बाबू! दादाजी आ रहे हैं।

पिरथी—खूब सुन रहे हैं···पर तू तो ऐसा कहती है जैसे आज पहली ही बार आ रहे हैं। एक बार सुबह लौट जाय तो लौट जय, पर उनका नागा नहीं हो सकता।

काशी—मगर। आज भइया! बड़ी देर में दरवाज़ा खुला है। मूड नहीं ठीक होगा। (घबरा कर तत्परता से) और आ नहीं रहे हैं···(आवाज़ें पास आती हैं) आ ही पहुंचे!!

(आवाज़ें और भी उभरती हैं। नाथूराम बोलने का प्रयत्न कर रहे हैं पर दादाजी बोलने नहीं देते)

दादाजी—ए! ए! ए! ए-क-घंटा मुझे दरवाज़ा खटखटाते हो गया।

हां नाथूराम ! एक घंटा ! कैसा समय आ गया है कि बड़े बूढ़ों का कोई ख़याल ही नहीं करता।

नाथूराम—(ज़ल्दी से) दादाजी ! क्या कहें,…कि सभी…(समझाते हुए) बात ये है कि आपकी बहू के…कि मैंने कहा…

दादाजी—कुछ नहीं राव साहब, समय का फेर है। अपने समय में हम भी थे…क्या मजाल कि कोई ग़लती हो जाय। घर पर नहीं…किवाड़ पर नहीं…कान ऐसे तेज़ थे…कि सड़क पर चलते बुजुर्गों के पांव की चाप पहचानते थे…किवाड़ पर हाथ देने के पहले–उधर किवाड़ खुले, और हम, सर झुकाये क्या कहते हैं 'प्रणाम' करते दीखते थे। क्या समझे !!

नाथूराम—(मानते हुए) दादाजी…वाकई बड़ी ग़लती हो गई।

दादाजी—(अविश्वास से) तुम्हारी ग़लती ? हुं-हुं नहीं, इसी से तो बड़े बूढ़े कह गये हैं कि वानप्रस्थ आश्रम (पिरथी छींकता है) समय का फेर है…पिरथी ! अरे काशी !—सो रहे हैं ?

पिरथी—नहीं दादाजी…कौन सो रहा है…हरगिज़ नहीं…यूं ही लेटा लेटा 'पैराडाइज़ लॉस्ट का मनन कर रहा हूं।

दादाजी—अरे ! यह बिस्तर में पड़े पड़े पढ़ने की खूब रही, कुंवरजी ! हमने भी अपने ज़माने में न जाने कितना पढ़ लिख कर एक तरफ कर दिया। मगर सुबह चार बजे से पहले-दूर किसी बगीची बावड़ी की ओर निकल जाते थे…हां ! और फिर…हम हैं कि किताब-बिताब है और हम। बड़े बड़े ग्रन्थ पनाह मांगते थे। ज़बान पर रहते थे सब। दर्जे में एकबार मास्टर ने कहा- 'पढ़ो तो आगे' अब पूरे पैंतीस पन्ने उस किताब के गायब थे मगर मुझे क्या…खड़े होकर…खर्र से पढ़ दिया। क्या मजाल कि एक हरफ इधर से उधर हो जाय। एक तुम आजकल के छोकरे ! कि पैराडाइज लॉस्ट नावेल पढ़ रहे हो।

पिरथी—(बनावटी आश्चर्य से) 'सॉरी' दादाजी, नावेल…

दादाजी—हां ! वह भी दुकाची-और क्या।

पिरथी—(दर्शकों की ओर) ठीक है दादा जी, आपके दिन दूसरे ही थे-अब तो दुनियां बदल गई है न—आपके ज़माने की 'नावेलें' अब महज 'पोइट्री' यानी 'कविता' होकर रह गई हैं।

दादा—(खांसते हैं फिर हंस कर) और वो भी आप, पढ़ते हैं विस्तर में पड़े पड़े। राम राम ! काशी बाई कहां है ?

पिरथी—ये रही न, आंखें मूंदे कुछ बुबबुदा रही है।

[काशी बाई बुदबुदाती है]

दादा—क्या कहा ? दिन निकल आया और तुम आंखें मूंदे पड़ी हो। भई वाह—क्या समय आ गया है—यानी तुम...

काशी— ऊं ! ऊं ! ऊं ! ऊं ! (कुछ न कहने का ईशारा करती है।)

दादा—यानी यह क्या तमाशा है ?

कांशी—(एकाएक) गंगा तरंग रमणीय जटा कलापम्

गौरी निरन्तर विभूषित वाम भागम्
वाराणसी पुरपतिम भजविश्वनाथम्

(बिगड़ती हुई) सब खंडित कर दिया-न-आपने दादाजी। अभी सुबह से उठ कर अट्ठाईसवां पाठ कर रही थी कि, सब करा धरा चौपट कर दिया ! लो बोलो !!

दादा—हां ! हां ! यह पाठ का तो काम ठीक है···पर विस्तर...में आलस्य की गठरी बने हुए इस तरह भगवान् का नाम लेना... महज़ यही बताता है कि मति मारी गई है। यह तो न हुआ कि चट से···।

पिरथी—हां और क्या, उठ बैठती—नहा डालती—और इधर उधर डोलती—काम करती नज़र आती। क्यों, है न दादाजी ?

दादा—(झिड़क कर) ऐ पिरथी। कल का छोकरा, मेरे मुंह की बात इस तरह छीनता है।

पिरथी—(बनावटी दीनता से) दादाजी सोचिये न, कि सिवा 'बातों' के आपके पास अब और रह ही क्या गया है।

नाथूराम—(बीच में डांटते हुए) पिरथी। दादाजी के मुंह न लग—चल जाकर मुंह हाथ धो डाल—और तू भी काशी बाई!

काशी—(लाड़ से मुंह बिचकाते हुए) अभी से उठ कर होयेगा भी क्या? चाय का कहीं कुछ डौल दीखता नहीं। और भाई अपनी सुबह तो बिना चाय के गरम प्याले के बस ऐसी समझो जैसी···

[बात कट जाती है]

पिरथी—बिना दादाजी के ज़िन्दगी। क्यों?

दादा—क्या कहते हैं···कि मैंने कहा···(हंसते हैं) कि वाह रे ज़माने! बलिहारी है और क्या कहूं नाथूराम! देखा तुमने! लो चाय आ ही गई। (नाथूराम खांसना शुरू करते हैं इसी बीच सुनयना चाय लेकर आती है)

सुनयना—(आते आते) फिर तुम्हारी खांसी चली। (बरतन रखते हुए) मैं पूछती हूं—क्यों नहीं किसी अच्छे डाकरको दिखाकर अच्छी तरह लग कर एक बार इसका इलाज करा डालते। यूं 'रोग' पालना अच्छा नहीं। 'शत्रु' और 'रोग' को कभी कमज़ोर न समझना चाहिये। दादाजी! चाय लें!

नाथूराम—(कुछ कुछ खीझते हुए) किसी अच्छे डाकर को दिखा लें? अरे यह भी सोचा है कि यह कोई 'वर' दिखाई नहीं और न है 'बहू की मुंह दिखाई ··इस दिखाई सुनाई···में नोटों की गड्डी···चट इधर से उधर हो जायगी (और बिगड़ कर) बस अव देखा न ताव···राय दे ही बैठीं। (खांसता है, (दादाजी प्लेट से चाय पी रहे हैं)।

सुनयना—अरे वाह रे वाह! कोई सुने तो बस यही कहेगा—मत

मारी गई है। (कुछ सोच कर दृढ़ता से) लो चलो, मैं इस महीने दूध नाश्ते और पिरथी-काशी के जेब खर्च में कमी करके रुपये तुम्हारे हवाले करती हूं। करो इलाज। जान है तो जहान है। मगर भई…

दादा—ज़रा यह चाय की केतली इधर बढ़ाना तो बहू !

(चाय और लेकर पीते हैं)

नाथूराम—मैं भी (खांसता है) सोचता हूं कि किसी डाक्टर का सहारा लेना ही अब हितकर होगा, किसी डाक्टर को दिखा ही दूं !

दादा—(बीच में) क्या दिखा लोगे डाक्टरको—सिवा अपनी बेवकूफी के ? और आपके पास है ही क्या। वाह भाई वाह, बस ज़रा सी खांसी आयी-और चल पड़े आप-डाक्टरके यहां-फरियाद लेकर। मैं आपसे पूछता हूं-कि दो चार किताबें पढ़-चश्में कमानी से लैस हो जाने से भला किसी में वह कौन सी ताकत आ जाती है कि सभी रोगों के इलाज वह कर ही लेगा। (तेज़ी से कुछ चबाता हुआ) हां भाई…ज़रा बताना तो मुझे। (चाय सुड़कते हैं) यह सब फिज़ूल है… फिज़ूल।

नाथूराम—(अनिश्चित सा) हां यह भी बात ठीक—जान पड़ती है। (सुनयना से) मैंने कहा सुनो—आखिर फायदा भी क्या इस प्रकार रुपया फेंकने से ?

सुनयना—(चिढ़ कर तो यह रुपया फेंकना है…साठ के होने में तो अभी बहुत कुछ समय है। ज़माना इतना भी क्या नया हो गया…कि दस पन्द्रह साल आगे की बातें अभीसे होने लगीं। (दर्शकों से) भाई वाह…आपसे मिलिये।

(काशी बाई का प्रवेश)

काशी—(आते आते) अगर इस वक्त कोर्ट में बापू की खांसी का मसला पेश है...तो मेरी भी राय नोट कर ली जाय—किसी 'स्पेशलिस्ट' को फ़ौरन 'कन्सल्ट' किया जाना ज़रूरी है।

दादा—(बिगड़ कर) आ गई—'स्पेशलिस्ट' वाली! 'तुम' क्यों इस तरह बिला मतलब अपनी राय पेश कर बैठती हो?

काशी—(आंखें ऊपर करके हाथ से वार सा रोकती हुई) अरे-रे-रे—चाय देना मां-चाय।

दादा—(वैसे ही) कितनी बार तुमको सिखा चुका हूं—कि बच्चों को चाय नहीं पीनी चाहिये, इससे उनकी बाढ़ मारी जाती है! सुना!

काशी—(इधर उधर देख कर) हां किसी बच्चे को यह सुनाया जा रहा है। मगर श्रीमान दादाजी-बच्चा तो मुझे कोई यहां दिखता नहीं—'वेरी सॉरी' दादाजी (एक एक शब्द दबा कर) अगर आपका भूले से मतलब है द्वितीय वर्ष कला की विद्यार्थिनी कुमारी काशी बाई से-यानी ५ फीट ३ इंच लम्बी सुश्री 'मुझसे' तो आपको भी फ़ौरन किसी 'आई स्पेशलिस्ट' यानी 'आंख के स्पेशलिस्ट' से बातचीत करनी चाहिये। (सुनयना से) दे...ना...मां। बाढ़ मारी जाती है!

दादा—(चाय सुड़कते हुए) नया ज़माना है, इसको कहते हैं कि अच्छी सीख नहीं लेता कोई। तो नाथूराम! मैं अभी क्या कह रहा था?

सुनयना—(घूंघट ज़रा सरका कर) इनसे फ़िलहाल-तो दादाजी! और कुछ नहीं-यही कहिये-कि यह फ़ौरन किसी अच्छे डाक्टर से मिलें।

काशी—किसी 'स्पेशलिस्ट' से आज ही—अभी।

दादा—(चिल्ला कर) फिर वही स्पेशलिस्ट-स्पेशलिस्ट यानी...मेरे मुर्गे की तीन टांग। मैं कहता...हूं आजकल के डाक्टर स्पेशलिस्ट

क्या जानते हैं ? अपने घर के सामने एक पट्टी रंग कर टांग लेने से कोई-क्या कहते है···कहीं 'स्पेशलिस्ट बन जाता है। इसके लिये तजुर्बे की ज़रूरत है।

काशी—(समझाते हुए) ये तो तब मानेंगे जब हर 'स्पेशलिस्ट' के लम्बी दाढ़ी हो···वो भी...सफेद, और जिसमें सामने तख्ती लटकती हो...क्यों दादाजी ?

दादा—चुप रहो···इस तरह बीच में...बड़ों की बात मत काटा करो (बफर कर) हम भी कभी जवान थे ! बच्चे थे !!

काशी—(बनावटी आश्चर्य से) हां, दादाजी !! बिल्कुल यकीन नहीं होता कि आप कभी बच्चे या जवान न थे, भई नहीं ?

सुनयना—(बीच में) काशी बाई ! तू अपना काम कर जाके। बीच में इस तरह बोलने की आदत बुरी होती है।

दादा—ज़रा सी (खांस कर बताता है) खांसी आई और 'रावसाहब' घर के रुपये बटोर कर चल दिये···उनको फूंकनेके लिये। ऐसी भी क्या बात है ? यह तो ऐसे लटकों से ठीक होती है कि हर्रा लगे न फिटकरी। एक बड़े पुराने सिद्ध जी की बताई तरक़ीब है···सुनो इधर–(धीरे धीरे) इतवार मंगल किसी चौराहे पर उत्तर की ओर खड़े होकर—दक्षिणकी ओर चावल उछालते हुए यह मंत्र ज़ोर ज़ोर से दस बार पढ़ो तो :—

सब कुछ पलायन होवे हो-हो-हो-हो
काले कूकुर की सवारी भैरव जी की।
भागें दुःख कष्ट निकट नहीं आवें
हो-हो-हो पलायन होवें–हूं-हूं-हूं।

(हाथ झाड़ कर चुटकी बजाते हुए) और बस, फिर घर लौट आवो। मगर भूले से भी पीछे मुड़ कर न देखना। समझे।

काशी—(वैसी ही) समझे ! पीछे मुड़ कर देखने की फुरसत भी

कब और किसे होगी, मुहल्ले भर के कुत्ते दौड़ते हुए घर तक पहुंचाने की जल्दी में जो होंगे। (साधारण तेज़ आवाज़ में) बापू इन फिज़ूल बातोंमें न पड़िये—सीधेसे एक जाने बूझे किसी योग्य डाक्टर की शरण लीजिये।

सुनयना—(फिर घूंघटखिसकाते हुए) नहीं, मैं यह नहीं कहती कि दादाजी वाली तरक़ीब की ही न जाय। वह भी करो—पर साथ ही साथ डाक्टर को।

[बात कट जाती है]

दादा—फिर वही दुम—टेढ़ी की टेढ़ी। बहू तुम भी इन नये लड़के लड़कियों की बातों में आने लगीं!

सुनयना—(धीरे धीरे) दादाजी इधर कुछ इनकी खांसी का रंग ढंग मुझे ठीक लगता नहीं है। मैं तो यही कहूंगी कि डाक्टर को···

दादा—खांसी आती है आने दो—बढ़ जाती है बढ़ जाने दो—पर डाक्टर को इसमें रुपये भरने से क्या होगा? सिवा रुपयों की हत्या के और मुझे कुछ सार दीखता नहीं (कुछ सोच कर) अच्छा तो सारा मसला खांसी का ही है न। मैं अभी खुद ही उसे साफ किये देता हूं। राव नाथूराम!

नाथूराम—(घबरा कर) जी दादाजी!

दादा—(तत्परता से) तुम चलो तो मेरे साथ!

सुनयान, काशी—कहां?

दादा—(धीरता से) छत पर।

नाथूराम—(शक्ति के स्वर में) क्यों दादाजी?

काशी—(फुसफुसा कर मां से) कहीं छत से नीचे न ढकेल दे बापू को—यह दादा।

सुनयना—(वैसे ही) चल हट!

दादा—आज मैं तुम्हें वह तरकीब मिनटों में सिखाये देता हूं कि

जिसे बड़ी मेहनत से एक पुराने सिद्ध से मैंने बरसों बाद हासिल की थी। एक ऐसा योगासन—कि चाहे जैसी खांसी हो—यूं जाती है (चुटकी बजाकर) यूं। एक दम साफ!

काशी—दादाजी! आप तो खुद ही छिपे स्पेशलिस्ट निकले। फ़कत क़सर है तो एक लम्बी- न - न - न - न बह नहीं (रुक कर) डाढ़ी की।

सुनयना—(नाथूराम से) अरे ऐ—ज़रा संभाल कर यह आसन वासन करना। हां।

[ऊपर जाने का उपक्रम]

सुनयना—यहीं कर लो न—हम लोग खुद ही चले जाते हैं। चलो रे चलो सब (जाते हैं)

दादा—अच्छा तो ज़रा पैर ऊपर फेंको, दाहिनें तरफ देखो और दाहिने नथुने से सांस ऊपर खींचो-और ज़ोर से। नहीं-नहीं !! मैं कहता हूं—सांस ज़ोर से खींचो, मेरा हाथ नहीं, हां ऐसे। और ज़ोर से।

[हांफता है]

दादा—अच्छा तो अब दोनों पैर ऊपर हवा में फेंको। ज़ोर से। नहीं बना। मैं कहता हूं और ज़ोर से फेंको।

नाथूराम—दादाजी-अब आज और नहीं—इतना ही बस।

[हांफता है पर खांसी आती है]

दादा—अभी कुछ कसर है। अभी कसर है। फिर ज़ोर से फेंको पैर। डरो मत मैं रोके हूं।

नाथूराम—मगर डर लगता है दादाजी कहीं लग वग जायेगी तो।

दादा—मैं जो हूं—फिर डर की क्या बात! अरे भाई! कभी ऐसे दो चार घंटे खड़ा रहता था। क्या समझे। फेंको पैर। सोचते क्या हो—ज़ोर से—मैं संभाले जो हूं।

नाथूराम—और न संभाल पाये तो !!

दादा—(कड़क कर) बकवास बन्द। फेंको पैर—हां।

[दोनों गिरते हैं, दोनों कराहते हैं]

नाथूराम—कमर टूट गई—कमर। सर भी दीवार से लड़ गया बाप रे–बाप।

दादा—(नीचे से) अरे मेरी पीठ पर से तो हट बेईमान। मार डाला रे, अनाड़ी कहीं का। बहू ! बहू...।

नाथूराम—मैंने पहले ही (रुक कर) कहा था कि आप संभाल नहीं पायेंगे। अरे ज़रूर कोई हड्डी टूट गई है।

[कराहते हैं]

(सुनयना, पिरथी, काशी दौड़ते आते हैं)

पिरथी—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

काशी—अरे राम राम, अरे हुआ क्या···दोनों बिल्कुल बिखर गये··· बिखर।

सुनयना—(परेशानी में) मैंने पहले ही कहा था कि इस फालतू धमा चौकड़ी में कुछ नहीं रक्खा है।

नाथूराम—(कराहते हुए) मुझसे तो हिला भी नहीं जाता !

सुनयना—(ज़ोर से) कोई हड्डी वड्डी तो नहीं टूट गई !

नाथूराम—(खांसता है)

पिरथी—(आश्चर्य से) खांसी···तो···अभी···वैसी की···वैसी ही है।

दादा—(कराहता हुआ) मेरी कमर तो जैसे टेढ़ी हो गई है। हमने अपने टाइम में बड़ा बड़ा योग साधा, आसन किये (कराहता है) सब तरह की कसरतें की...पर ऐसा कभी नहीं हुआ।

पिरथी—अरे...उठाओ तो...इनको-कुछ पता भी चले...कि हुआ क्या ?

काशी—(तत्परता से) भइया वो मोड़ वाले डाक्टर को तो लपक कर बुलाते लाना।

दादा—(कराहते हुए डांटते हैं) क्या कहा डाक्टर! उसका क्या होगा! नहीं चाहिये···बस ज़रा—हल्दी चूना में तमाखू की छींटे मार कर सेंक दो, बहू! फिर पीपल के नये पत्ते में भुनी लौंग और जायत्री का धुआं देकर बांध देना—सब ठीक हो—जायेगा (कराहता है)

[फेड आउट]

सुबह आगे बढ़ कर दिन में समा गई और यूं ही वह घड़ी भी बीत गई। इस घटना का असर कई दिनों तक चलता रहेगा ऐसा मालूम होता है। मगर फिर यूंही सुबह होती है शाम होती है जिन्दगी का दौर एक दिन और आगे सरक कर बढ़ जाता है।

(पटाक्षेप)

—:*:०:*:—

हम तो सफ़र करते हैं

—:o:❉:o:❉:o:—

समय : रात्रि ग्यारह बजे

स्थान : नाथूराम के घर का ख़ास कमरा

पहला दृश्य

यात्रा की तैयारी है इस लिये चारों ओर सामान कुछ बिखरा हुआ दिखे, कुछ पैक होकर सहेजा हुआ, कुछ वैसे ही। एक बन्द और एक खुला हुआ बाक्स भी, यदि हो सके तो ठीक रहेगा पर सामने एक बड़ा सा होलडाल होना बहुत आवश्यक है जो खूब भरा हुआ हो।

दृश्य दूसरा

स्थान : सड़क पर स्टेशन के लिये रवाना हो रहे हैं

इस दृश्य के लिये एक रिक्शा आवश्यक है दूसरे और तीसरे के लिये दायें बायें दो चालकों की आवाज़ तथा भोंपू आदि से काम चल सकता है। पात्र पहले सब सामने स्टेज पर रहेंगे और बाद में कथानक के अनुसार बांई या दांई ओर जायेंगे। वहीं से उनकी आवाज़ें आती रहेंगी और इस प्रकार दृश्य स्थापना हो सकेगी।

तीसरा दृश्य

स्थान : रेलवे स्टेशन का प्लेट फार्म

यदि संभव हो तो एक पर्दा बनवाया जाय यदि नहीं तो फिर चतुराई से लाल हरी बत्तियां तथा आर्क

लाइटें, तथा वर्दी धारी स्टेशन के अफसर, कुली आदि, तथा कम्पार्टमेन्ट का एक हिस्सा तैयार किया जाय जहां एक्शन दिखाया जायेगा। दूसरे दृश्य के बाद स्टेज लाइटों को हटा कर, फिर से व्यवस्था की गई लाइटों को काम में लाकर दृश्य स्थापना की जाय। असुविधा न हो तो फिर नीचे की सीट से ही काम चलाया जा सकता है।

(कथानक तथा दृश्य आदि ध्वनि-नाटक के होने से यह संभव है कि स्टेज के लिये प्रबन्धकों को कठिनाई हो, किन्तु थोड़े ही यत्न से, मुझे विश्वास है कि वह दूर अवश्य हो सकेगी)

पात्र :—

नाथूराम
सुनयना
पिरथी
काशीबाई
दादाजी
मुसाफ़िर
चाकूवाली
कुली
रेलवे कर्मचारी, दूसरे कुली, दो चार अन्य मुसाफ़िर आदि, (यदि उनको दृश्य स्थापना के लिये निर्देशक आवश्यक समझे तो)।

हम तो सफ़र करते हैं

—:❖:○:❖:○:❖:—

[पिरथी तथा नाथूराम सामान बांध रहे हैं। होल्डाल सामने है]

नथूराम—हां, ज़रा कस के ज़ोर लगाना तो ! और ज़ोर से !

पिरथी—(हांफता हुआ) बस बापू, अब और खिंचा कि गया यह होल्डाल।

नाथूराम—(डांट कर) बातें कम और काम ज्यादा किया करो बेटा पिरथी ! आजकल के नये लड़के–बस–लगाओ ज़ोर। हां॥

पिरथी—(कस के ज़ोर लगाता है) ए–हां–हां–(होल्डाल का स्ट्रैप टूटता है पिरथी गिरते गिरते पीछे से आती हुई सुनयना से टकरा जाता है वह नाराज़ होती है)

पिरथी—(हांफता हुआ) अरे-रे-रे-मैंने पहले ही कहा था-बापू (उठता हुआ) हड्डी टूट गई शायद।

सुनयना—(टूटा होल्डाल देख कर आंखे तरेरते हुए) अरे–क्या कहा था, आंख नहीं है आंख ! (नाथूराम से) यह क्या घोटाला हो रहा है ? अरे वह देखो, सब विध्वंस करे बैठे हैं। वाहरे आदमी ! राम ! राम ! चीज़ का सत्यानाश कर दिया। अब क्यों लिये खड़े हो उस तस्मे को। यूं आंखे फाड़ फाड़ देखने से कोई वह जुड़ तो जाने से रहा !

पिरथी—(सफाई देते हुए) मां-मैंने बापू से पहले ही कहा था कि ज्यादा खींच तान में...

नाथूराम—(बात काटकर ज़मीन पर पसर कर बैठते हुए) ऐ ले भले आदमी ! मैंने ये तो नहीं कहा था कि स्ट्रैप को दुश्मनकी टांग समझ कर ही खींचा जाय।

दादा—(बाहर से पुकारते, गुनगुनाते हुए ऊपर की ओर आते हैं) मैंने कहा...कि टाइम हुआ जा रहा है और तैयारी का नाम नहीं ! गाड़ी तो आप लोगों का इन्तज़ार करने से रही। क्या कहते हैं...आलस्य की गठरी बने हुए हैं...सब के सब। तीन दिन के लिये बाहर जाना है...उसकी तैयारी में...सात... दिन.. लग गये, क्या कहते है...(पहुंचता है)

नाथूराम—(व्यस्तता से) सब टंच हो गया दादा जी।

पिरथी—हो क्या गया, होते होते ज़रा सा हुच गया दादाजी। बस ज़रा सा !

सुनयना—(आगे आकर) खूब आये दादाजी, अब ज़रा देखिये कि यह गुनी जन आख़िर कर क्या रहे हैं।

दादा—(चश्मे से घूंरते हुए) अरे हां पिरथी, यानी कि ज़मीन पर लेटे हुए आप आख़िर यह कर क्या रहे हैं ?

पिरथी—(पसर कर बैठे बैठे ही) सर की चोटी को सहला रहे हैं, और यह भी सोच रहे हैं कि अब इस बिस्तरबंद के लिये सांकल तालाश करनी होगी।

दादा—(चश्मा ठीक करके दाढ़ी हिलाते हुए) गाड़ीके टाइम का भी ख़याल है, यानी कि क्या समझ रक्खा है...आपने गाड़ी को, कोई भैंसा गाड़ी ! ज़रा हाथ पैर जल्दी चलाइये तो शायद गाड़ी मिल जाए...नहीं तो बस...स्टेशन से...यूं...ही... वापस घर...

सुनयना—(पुकारती हुई) काशी ! ऐ काशी, तेरी तैयारी आख़िर कभी ख़त्म भी-होगी या नहीं। देख दादाजी आगये हैं-रिक्शे जाने कब से खड़े हैं (पुकारती है) काशी ! ऐ काशी...

काशी—(दूर से) आई-मां···आई···बस एक मिनट और···।

दादा—(इधर देखते हुए) मगर यह सामान का ढेर देख कर तो तबियत घबड़ाई जाती है। लगता है सारे मुहल्ले का सामान ही मेहरबानों ने इकट्ठा कर लिया है (गिनता हुआ) तीन बिस्तर···यह टोकरी···दो नहीं···तीन···सुराहियां···दो ट्रंक।

काशी—(आते हुए) मैं अपना ट्रंक बन्द कर आई हूं···नीचे मंगा लिया जाय। और हां मां, मैं रास्ते में क्या पहनूं; साड़ी··· मामूली धोती-सलवार-या-फिर...।

पिरथी—(बीच में काटता हुआ) ना–ना–ना, चाहे और जो भी···या सब कुछ साथ ही साथ पहन लो, पर 'या फिर' का नाम भी न लेना नहीं···तो···फिर···ड्रामा···शुरू होते देर न लगेगी और गाड़ी गई जानो।

सुनयना—(उधरदेखती हुई) 'या फिर' से तेरा क्या मतलब काशी ?

पिरथी—(अपनी तरफ मुख़ातिब करते हुए) मुझसे पूछो···मुझसे··· स्लैक्स और क्या।

नाथूराम—(चिहुंक कर) नहीं !

सुनयना—(साथ ही साथ) नहीं-न...नहीं

दादा—(दृढ़ता से) क्या कहा-स्लैक्स-यानी की वही पतलून ? हरगिज़ नहीं···हम आगरे ताजमहल देखने जा रहे हैं···कोई कम्पनी बनाकर सरकस करने नहीं।

पिरथी—(धीरे धीरे) एक्सक्यूज़ मी दादाजी ! (काशी से) यह डायलौग तो तैय्यार हैं....जब सचमुच···तुमने स्लैक्स धारण किया···नहीं...सुश्री काशी बाई...(हंसता है) सिली।

काशी—(सिली) इसमें इतना घबड़ा, जाने की ऐसी बात ही क्या है ? मैंने तो यूं ही पूछ लिया (तत्परता से) टाइम देखो टाइम।

दादा—(इधर उधर देखता हुआ) टाइम देखो, टाइम !! (संभल कर)

क्यों खड़े खड़े टिपिर टिपिर लगाये हो (सबों से) आखिर इरादे क्या है-आप लोगों के ?

काशी—सॉरी दादाजी (पिरथी से) पिरथी बाबू, ज़रा लपक कर मेरा बाक्स तो ऊपर से उतारते लाना।

पिरथी—(बिगड़ कर) मुझे-क्या-कोई भीम समझ लिया है-जो मैं आपका बाक्स (चुटकी बजाकर) यूं-उठा-लाऊं। (हाथ उठाकर) ना-बाबा-यह मुझसे न होगा।

दादा—(वैसे ही) यानी इस हाथ में ली हुई अटैची, यह बैग और दूसरे बैग के सिवा आपने एक ट्रंक और तैयार कर लिया है। बस...कि और कुछ ?

काशी—(बेतकल्लुफी की हंसी के साथ) बस जूतों का एक डिब्बा-मेरा कैमरा-और बस-क्यों...

पिरथी—(पलट कर) क्यों ? बस इसलिये कि अपन सब भाई लोग ईश्वर से प्रार्थना करें कि स्टैण्डर्ड आफ लिविंग अब और ज्यादा न बढ़ाइये प्रभो-नहीं तो-गाड़ी के डिब्बे भी कुछ बढ़ें और ज्यादा हो जांय-तो बात बनेगी। (मुंह चिढ़ा कर) क्यों ?

दादा—(दर्शकों की ओर) बात अब समझ में आती है कि आख़िर क्यों आजकल का सफर करना मुसीबतेजान हो गया है।

काशी— गुस्से में) इसमें परेशानी की क्या बात है-दादाजी ! आख़िर यह सामान आपको—सॉरी, किसी को, पीठ पर तो लादना नहीं पड़ेगा।

[रिक्शे वाला पुकारता है]

सुनयना—(अन्दर आते हुए) तो-कांफ्रेंस ख़त्म करके चला ना जाय। पैसे दूने मांगेगा दूने।

दादा—(चौंक कर) दूने पैसे, कौन रिक्शेवाला ? मैं समझ लूंगा। क्या समझ रक्खा है।

नाथूराम—(पुकारते हुए) अरे भाई-रिक्शेवाले ! ज़रा आना तो-सामान में हाथ लगाना पड़ेगा।

[सामान खिसकाया जाता है—ले जा रहे हैं]

नाथूराम—ज़रा संभाल के-संभाल के-दीवार का पलस्तर-न गिरा देना भाई।

पिरथी—(बोझ से दबा हुआ) काशी ! ये-बक्स में भरा क्या है ?

काशी—(ज़ोर से) यही ईंट, पत्थर और पलस्तर।

दादा—चलो-चलो-जल्दी करो, बातें फिर बना लेना।

नाथूराम—(तत्परता से) अरे भाई-सुनती हो, ताले वगैरह तो ठीक से लगा दिये हैं न। आगे वाले कमरे में-ऊपर वाले गुदाम में-पूजा वाले······

सुनयना—(बात काटते हुए) अरे अब बस भी करो-गिनती न गिनाओ ! बात तो ऐसी करेंगे कि आप दुनियां भरकी फिकर अपने सिर ओढ़े हैं। अपनी खुद की ये पगड़ी-(देती है) और रुपयों का पर्स...(दराज़ खोल कर निकालती है)...का ख़याल नहीं और...न बात बात...पर काम आने वाले। (फिर दराज़ खोलती है) चश्मे का। क्यों (मुंह चिढ़ा कर) ताले लग गये हैं !

नाथूराम—(शरमाता हुआ) हें-हें-हें-भाई, वह तो क्या कहते हैं··· कि मैंने कहा कि, काम में कुछ ऐसा लगा कि हें-हें-हें।

सुनयना—बस जब देखो तो बहाना मौजूद है···(मुंह बन कर) हें-हें-हें-हें।

दृश्य दूसरा

[सड़क पर तीन रिक्शे खड़े हैं]

दादा—(बड़बड़ाते हुए) तीन रिक्शे और वो भी सामान से ही भर गये। लो···बैठ लो···जल्दी···नहीं तो गाड़ी गई। बहू-तुम बैठो-न उस आगे वाले रिक्शे पर, जल्दी।

नाथूराम—(पुकारता हुआ बाहर से) पिरथी ! आ तू इधर आ जा और काशी, तू चली जा दादाजी के साथ-उस आगे वाले रिक्शे पर (बताता है)

दादा—तो बैठो भी न अब, ये लेना सुराही-पिटारी-गठरी-टिफिन कैरियर-झबिया और...

पिरथी—(सामान में दबा हुआ एक तरफ से चिल्लाता हुआ) बस ! बस ! बस-दादाजी, अब मैं गया...सड़क पर रिक्शे में-नहीं अटका रह सकता।

दादा—(ऊंची आवाज़ में) अरे नाथूराम क्या रिक्शे के चारों ओर उछल कूद रहे हो उछल के एक बार में चढ़ क्यों नहीं जाते ! इन्सान को इसीलिये कसरती होना चाहिये-कसरती।

नाथूराम—(उचकता हुआ) सामान ही सामान सब तरफ भई ! चढ़ूं भी तो-किस तरफ से-कहीं जगह भी हो !

दादा—तुम जवानों से तो हम बूढ़े ही भले। देखो ऐसे बैठा जाता है। जय बजरंग ! (उछल कर बैठता है)

काशी—(चिल्ला कर ताली बजाते हुए) अरे वाह दादाजी-वाह !

पिरथी—(वैसे ही) वेल डन दादाजी ! कमाल कर दिया।

दादा—(चिंतित सा) काशी ! यह किस चीज़ पर मैं बैठ गया !

काशी—(हंसते हुए) फिकर न कीजिये-आम और अचार की पोटली पर (ठीक से देख कर) पर हाय राम-सबके सब फंकने-पड़ेंगे-सबों का कचूमर निकल गया-कचूमर ! मां !

दादा—(बिगड़ कर) चुप रह यह तेरी शैतानी है-सारे कपड़े नास हो गये।

नाथूराम—(दूसरी तरफ से) बढ़ाओ न रिक्शे !

पिरथी—(बढ़ावा देते हुए) दादाजी ने कमाल कर दिया-कमाल।

दादा—(डांटते हुए) क्या मुड़ मुड़ कर देख रहे हो-रिक्शे वाले,

चलते क्यों नहीं ?

काशी—मां ! मां...।

[जाते हैं]

तीसरा दृश्य

नाथूराम—(व्यस्त भाव से—रेलवे प्लेटफार्म) कुली-ऐ कुली, उधर कहां जा रहे हो-साथ में चलो। साथ में ! मैं सब समझता हूँ। पिरथी ज़रा नज़र रखना नज़र।

दादा—(देख कर लपकते हुए) ये सामने वाला डिब्बा ठीक है (कुली से) जल्दी आगे बढ़ कर चढ़ा दो-सामान। देखता क्या है !

काशी—(दिखते हुए धीरे धीरे) दादाजी ! आपकी धोती में तो निरा अचार—आम फैल गये हैं।

दादा—(बिगड़ता हुआ) काशी मैं कहे देता हूं ! मुझसे बुरा कोई न होगा।

कुली—(पूछता है) साहब आप जायेंगे कहां ?

दादा—(वैसे ही नाराज़ी में) आप—जज हैं—या बालिस्टर हम सब समझते हैं—रखदो सामान इस डिब्बे में—फौरन।

नाथूराम—(और व्यस्तहोकर) पिरथी ! [काशी पिरथी के कान में कह कर...दादाजी की ओर इशारा करती है वह भी हंसता है] काशी ! सीटों पर कब्ज़ा करो जल्दी ! बढ़ो आगे।

[सामान रक्खा जाता है, एक मुसाफिर लेटा हुआ है]

दादा—(इधर उधर देख कर) ए-मिस्टर ! ज़रा उठ के बैठिये (मुसाफिर वैसे ही लेटा रहता है) मैंने कहा, ज़रा उठ के बैठिये-उठके। हमको भी आखिर सफ़र करना है।

मुसाफिर—(बिगड़ कर) तो कौन कहता–है कि आप सफ़र न कीजिये ...मगर मेरे ही सर पर चढ़ कर क्यों ? क्या यह ज़रूरी है

आप मुझे ही परेशान करें ? सफ़र करना है तो शौक से कीजिये।

दादा—(लड़ाई मोल लेते हुए) यानी—मतलब निकला—यह कि मैं आपको—परेशान कर रहा हूं।

मुसाफिर—(पलट कर) जी नहीं ! आप मेरा दिल बहला रहे हैं 'हम सफ़र साहब'।

दादा—(पैंतरा लेकर) जनाबे आला ! मैं तो बस यह अर्ज़ कर रहा हूं कि ज़रा परे हो जांय आप, तो हमारा भी सफ़र कट जाय स्टेशन दो स्टेशन की बात नहीं सारी रात का सफ़र है।

मुसाफ़िर—(तेज़ पड़ कर) तो आप चाहते क्या हैं...कि मैं उठ कर खड़ा हो जाऊं।

पिरथी—(नरम आवाज़ में) जी नहीं साहब खड़े नहीं ! राम राम (नफ़ासतसे) इतनी बड़ी बात नहीं—दादाजी का कहना है ! कि आप महज़ उठ कर बैठ जांय। (वैसे ही इशारे से) ज़रा बिस्तर भी दबा लीजिये।

मुसाफिर—(उठकर बैठते हुए) अगर बैठना है तो फिर मेरे बिस्तरपर ही बैठ जाइये (दृढ़ता से) बिस्तर तो नहीं खिसकेगा।

पिरथी—(दादाजी की ओर देखता हुआ) ज़रा सोच लीजिये-मेरी सलाह माने तो···

मुसाफिर—(बिगड़ कर) नहीं तो आप क्या करेंगे ?

पिरथी—करेंगे कुछ नहीं ! हमें क्या ?

काशी—(तरस खाकर) कम से कम चादर तो हटा लीजिये...बड़े अच्छे फूल कढ़े हैं।

पिरथी—(समझाते हुए) मान जायें न !

मुसाफिर—(वैसे ही बिगड़ता हुआ) जी नहीं—आपने क्या समझ रक्खा है मुझे। किसी भले आदमी पर ज़रा सा तो रहम किया करें।

पिरथी—(लाचारी से) रहम ही तो आता है मगर···

काशी—(पूरा करती हुई) आप मानें तब तो (एक सांस लेकर) तो बैठ जाइये दादाजी (वह बैठ जाते हैं)

नाथूराम—मैं ऊपर की सीट पर चला जाता हूं। काशी तू मां के पास रह। पिरथी दादाजी संग संग रहेंगे।

दादा—(देखते हुए) लगता है किसी किले के आला अफ़सर मोरचे बंदी कर रहे हों-अच्छा-बहुत हुआ-बंद कीजिये हिदायतें-सब युहीं ठीक है।

(स्टेशन की आवाज़ें आती हैं—पान-बीड़ी-सिगरेट, पानी-लेमन, वगैरह ?)

सुनयना—(अपनी जगह से) मैंने कहा चार बीड़ा पान तो लेना पिरथी। (एकाएक याद करके) अरे सुनते हो—टार्च ले ली थी न।

पिरथी—चार पान मसाले वाले-(वहीं से)...टार्च बापूके पास थी।

नाथूराम—(घबड़ा कर) क्या कहा मेरे पास ? ओ काशी···

काशी—हां बापू।

नाथूराम—मैंने तुझसे कहा था न कि ज़रूर ज़रूर लेते चलना क्यों ?

काशी—मुझसे कहा था ?

सुनयना—(बड़बड़ाते हुए) क्या क्या लोगों से पाला पड़ा है...कि एक छोटी सी बात भी याद नहीं रहती।

दादा—(अपने में मगन) हां-हां—अभी क्या हुआ है आगे पता चलेगा कि कौन कौन सी चीजें रह गई हैं (चारों ओर देख कर) यूं सामान है पूरा जहाज़ भर का। ज़बान कतरनी की तरह चलती है। चाकू की तरह तेज़ (याद करके) मैंने कहा किसीने चाकू ले लिया है। चाकू बेचने वाली : चाकू लेलो चाकू-कतरनी (चलाती है) चाकू बिलकुल पक्का···सर का बाल काट कर छै टुकड़े कर देगा। ऐ बूढ़े बाबा बोल-बोल कितने का होगा-सवा रूपैया चाकू-अढ़ाई की कतरनी। लेगा ? बोल लेगा ! कितना दाम देगा-ऐ बूढ़ा बाबा।

दादा—(दबते हुए) अरे सर पर चढ़ी आती है। चल चल ! जाने कहां से आकर पीछे पड़ गई। अभी पुलिस बुलाता हूं।

चाकूवाली—(ख़तरनाक ढंग से) पुलिस ! चाकू तेज़ है (हंसती है गले पर इशारा करती है) इश। ऐसा पाप कर सकता है आप (हंसती है) बूढ़ा बाबा बोल कितना दाम देगा-एक दम पक्का लोहा। तुम्हारा वास्ते ! चाकू एक रुपिया करतनी दो रुपिया ! बोल…।

दादा—(गले पर हाथ रख कर) अरे-अरे-इत्ता तेज़ ! इश…।

सुनयना—(बीच में) इसके मुंह नाहक क्यों लग रहे हो दादाजी ! तेज़ चाकू इधर उधर हिलाती है कहीं लग वग जाय तो ? जाने किधर से स्टेशन में घुस आते हैं ये लोग।

नाथूराम—(समझाते हुए) अरे भाई हमें चाकू वाकू नहीं चाहिये और फिर इतना तेज़ चाकू लेकर हम करेंगे भी क्या ? यहां तो आम-वाम ही काटने हैं।

काशी—[मायूसी में] और वो भी अब रहे नहीं च-च-च-।

सुनयना—(चौंक कर) क्यों क्या हुए ? आम और अचार तो साथ साथ मैंने खुद रक्खे हैं।

काशी—वो सब तो ठीक है पर हुए क्या ? यह दादाजी से पूछ लो न।

चाकूवाली—(बीच में) ए बूढ़ा बाबा बोल, बहुत तेज़ है। तेरे वास्ते-सच्ची-चाकू आठ आना-कतरनी एक रुपिया। बोल, क्या देगा ?

दादा—(अलग करते हुए) नहीं चाहिये मुझे यह सब झमेला—मैं पुलिस को बुलाता हूं (मुसाफिर से) क्यों भाई देखते हो कैसे भले आदमियों के पीछे यह मुसीबत खड़ी कर देती हैं।

मुसाफ़िर—(मुस्कुराता हुआ) वो तो देख ही रहा हूं (दर्शकों की ओर) भले आदमियों की सचमुच मुसीबत है। पर साहब

अचार तो आप लोगों के यहां ख़ूब बतना है। (सांस खींच कर) क्या महक रहा है! क्या सुगन्ध है!

काशी, पिरथी—(हंसते हैं)

पिरथी—गाड़ी चलने वाली ही है।

काशी—चलो जगह खूब मिली।

सुनयना—मगर टार्च रह गया बड़े अफसोस की बात है।

पिरथी—(बात बदल कर) अरे तो फिर रह गया तो रह गया, कौन ताजमहल टार्च से देखने की सलाह थी।

सुनयना—लापरवाही तो लापरवाही, यह अलग की बात है कि किसी चीज़ की ज़रूरत हो या नहीं।

पिरथी—(सलाहन) दादाजी अपन लोग उतरते ही सीधे ताजमहल ही चल देंगे न या कि स्टेशन पर कुछ समय रुक कर तब।

दादा—(ऊब कर) पहले स्टेशन तो पहुंच लो फिर देखा जायगा।

मुसाफिर—(चौंक कर) बूढ़े बाबा आप जायेंगे कहां ?

दादा—(बिगड़ कर) बूढ़े बाबा! भला यह जानकारी आप क्यों करना चाहते हैं ?

मुसाफिर—करना कुछ नहीं है, वैसे ही पूछ लिया।

पिरथी—(बताता हुआ) हम लोग ताजमहल वगैरह देखने जा रहे हैं।

(हंसता है, और हंसता है)

दादा—क्यों इसमें हंसने की क्या बात है ?

नाथूराम—आखिर क्यों।

मुसाफिर—हंसी कमबख्त आ ही गई (सलाहन) वैसे गाड़ी यह आगरे नहीं, दिल्ली जाती है दिल्ली।

काशी—(चिहुंक कर) दिल्ली।

दादा—(चीखते हुए) क्या कहा दिल्ली ! जाती है-यह गाड़ी !

पिरथी—(नाराज़ी से) ओह माई गॉड ! दादाजी अच्छा डिब्बा ढूंढा आपने और कुली पूछता ही रह गया।

नाथूराम—(रुकते हुए) मगर हमको तो आगरा जाना है।

सुनयना—(नाराज़ी से) वहां तो आप सबको बहुत पहले ही पहुंच जाना चाहिये था।

मुसाफिर—(हंसते हुए) हां-जाना तो चाहिये था-ज़रूर ख़ैर, देर आयद दुरुस्त आयद-पहुंच तो जाइयेगा ही।

सुनयना—(जल्दी में) सामान समेटो उतरना होगा। फौरन। भले लोग है समझें न बूझें। हमसे भले तो जंगल में रहने वाले।

दादा—(उंगली से इशारा करते हुए) इसमें सरासर इस डिब्बे वालों की साज़िश है (सब हंसते हैं) क्या ज़माना है-कि किसी पर मुसीबत आये तो लोग खिल-खिल करें। यह जान बूझ कर शरारत की गई है (खड़े हो जाते हैं)

मुसाफिर—[चिल्ला कर] यह क्या है···मेरे सारे बिस्तरे में...अचार ही अचार हो गया।

पिरथी—जी नहीं ठीक से देखिये आम भी होगा (हंसता है)

काशी—असली दसहरी। आपसे पहले ही कहा था कि मेहरबानी करके ज़रा बिस्तर समेट लें च–च–बड़े अच्छे फूल कढ़े थे।

मुसाफिर—(गुस्से से कांपता हुआ) मैं–मैं–स्टेशन मास्टर को बुलाऊंगा। क्या समझा है ?

दादा—(अपने में मस्त) बस-बस-सामान समेटो-सामान-गाड़ी बदलना है नहीं तो चल देगी।

बेचनेवाला—(बीच में आकर) रेवड़ी लीजियेगा रेवड़ी। बढ़िया खोये की सोंधी रेवड़ी ?

दादा—(उतरते हुए) नहीं कुछ नहीं। कुली ! कुली ! समेटो सामान।

चाकूवाली—(बीच में) ए बूढ़े बाबा, ये चाकू 'तेरे वास्ते' चार

आना-कतरनी आठ आना। बोल देगा बहुत तेज़ है—ए बूढ़े बाबा।

(कुली कुली की पुकार। सब अलग अपने में मस्त)

पिरथी—कहां चले गये यह सब !

नाथूराम—नहीं चाहिये मुझे चाकू, कतरनी।

सुनयना—सामान समेटो न जल्दी ! गाड़ी छूट जायेगी।

काशी—पिरथी भाई-मेरा ट्रंक संभालना हां...

मुसाफिर—मेरी कितनी अच्छी चादर···इन भले मानसों का कोई ठिकाना नहीं—गार्ड साहब ! स्टेशन मास्टर (वगैरह)

पटाक्षेप

लौट के आये

समय : सुबह आठ बजे
स्थान : नाथूराम के घर का बरामदा

निर्देश :—

एक कोने में चटाई लपेटी रक्खी है। सामने दाहिनी ओर खूंटियों पर दो चार कपड़े लटक रहे हैं तथा उसी ओर अलगनी पर कुछ साड़ियां आदि सफाई से लटकती हुई दीखती हैं। यदि संभव हो तो कमरे का दरवाज़ा तथा उसकी खिड़की के जंगले भी दिखें जिसके सामने वह बरामदा है। बांई ओर एक छोटा सा तुलसी का चौरा (गमला काम में लाया जा सकता है) जिसके सामने सुनयना आंख बन्द किये, हाथ जोड़े बैठी दीखती हैं।

पात्र :—

नाथूराम
सुनयना
पिरथी
काशीबाई
दादाजी
पुरोहित
पंडितानी
उमा।

—:❀:o:❀:—

लौट के आये

×××××××××××

[सुनयना तुलसी के पास बैठी हुई कुछ बुदबुदा रही है]

सुनयना—हे पतित पावन ! हे दीन बन्धो ! तुलसी माता-बस इतनी टेर सुनो महारानी ! कि उनको सही सलामत यहां तक पहुंचा दो। अब एक तेरा ही सहारा है। हे पतित पावन-दीनन दुःख हरन हरे दीनबंधो। (वगैरह)

काशी—(अन्दर आते हुए) मा भइया तार देकर अभी नहीं आया ? (व्यग्रता से) दादाजी भी लगता है कि पुरोहित के यहां जाकर सो गये हैं। मैंने दूसरा सामान खोल दिया है पर बक्सों की ताली कहां है ?

सुनयना—(मुड़ कर देखते हुए) उन्हीं के पास है ! और साथ ही साथ गुदाम-पूजाघर-व आगे वाले कमरे की चाभियां भी उसी गुच्छे में थीं (विकलता से-तुलसी की ओर) जाने खाने को मिला हो या नहीं (काशी से) बिना किसी के दिये एक गिलास पानी अपने हाथ से उठाकर पीने की भी तो आदत नहीं है तेरे बापू की !

काशी—(समझाते हुए) मां ! क्यों इस तरह परेशान होती हो। क्या और किसी के कोई खोते ही नहीं-कभी (दर्शकों की ओर) अब खाया न-होगा-पानी न-पिया होगा-(सुनयना से) मैं कहती हूं कि तुम तो बस...

सुनयना—(आंखें चढ़ा कर उपेक्षा से) अरे वाह री लड़की, कोई सुने तो ! खायेंगे कैसे ! क्या भीख मांग कर ? रुपये सब तो

मेरे पास हैं ! उनके पास तालियों का गुच्छा ही है।

पिरथी—(आता हुआ) मां सब तार हो गये (उंगलियों पर गिनता हुआ) स्टेशन मास्टर को ! मामाजी को ! मौसी को ! एक बुआ जी को भी कर दिया है और (सोचता हुआ) एक कहो तो गवर्नमेन्ट गार्डन्स के सुपरिन्टेन्डेन्ट को भी कर दूं-कौन जाने कहीं किसी बेन्च पर आसन जमाया हो ? (चुटकी बजा कर) बस घड़ी दो घड़ी में खबर मिली ही समझो।

काशी—(सोच में) सभी जगह तारकर दिये, लेकिन व्हाट ए पिटी, बापू के पास एक पैसा भी नहीं।

पिरथी—(चौंक कर) हैं।

काशी—(वैसे ही) हें-हें क्या !! रुपये तो मां के पास हैं। वह तो कोरे के कोरे-बेचारे-जाने कहां विचर रहे हों। गाड़ी यहां के लिये शाम को ही मिलेगी।

पिरथी—(सोचता हुआ) कन्डीशन इज़ सीरियस (काशी से) आयेंगे कैसे...यानी बिला टिकट ? क्यों काशी ?

काशी—हां भइया सो तो बात है।

सुनयना—(बीच में तुलसी के पास से मुड़ कर) अब जाके ज़रा देख तो कि दादाजी कहां मर गये ?

पिरथी—(देखता हुआ) ऐसा न कहो मां।

काशी—(चिहुंक कर) कुछ करना न धरना-फालतू बातें बनाना। जा जाके पुरोहित जी और दादाजी को संग में ही लिवाते ला, फिर टिपिर-टिपिर करना।

पिरथी—अच्छा भाई चले···क्यों ले दे कर एक मेरेही पी···पीछे पड़ी रहती हो मां ? जाता हूं (जाता है)

[कुछ बोल चाल की आवाजें उभरती हैं]

सुनयना—कौन आया काशी ?

काशी—(देखते हुये) पड़ोस की पंडितानी हैं और उनकी बेटी उमा।

सुनयना—(उठ कर स्वागत करते हुए) आओ बहन आओ।

काशी—(आगे बढ़ कर) उमा! कैसी हो? हम लोग तो अभी अभी चले आ रहे हैं, आगरे से।

पंडितानी—(उत्साह से) अरे क्या-क्या-ले आई हो-सुनयना आगरे से?

सुनयना—(दुखी स्वर में) ले क्या आई बहिन तुम्हारें! देवर वहीं स्टेशन पर छूट गये।

पंडितानी—(चिहुंक कर) वहीं रह गये? स्टेशन पर-अरी उमा!!

उमा—(पलट कर) हां-मां!

पंडितानी—सुना तैंने! तेरे चाचा स्टेशन पर छूट गये।

उमा—(वैसे ही) हाय-राम!

काशी—(बात पलटते हुए) मा तो नाहक फिकर कर रही हैं, मैं कितना समझाती हूं कि इसमें वैसी कुछ बात नहीं।

पंडितानी—(ताड़ना के स्वर में) कल की छोकरी है काशी, तू क्या समझे यह सब बात-क्यों उमा?

उमा—(आंखें नचा कर) हां-मां!

पंडितानी—याद है जब तेरे बप्पा तीसरे साल मथुरा के मेले में खो गये थे?

उमा—(रिकार्ड की तरह) हां-मां (औरों से) घंटे भर के अन्दर मां ने पचीसों मंदिरों में माथा टेक कर मनौती मान डाली। हां चाची! सच्ची मानो-पचीसों मंदिरों में।

काशी—(अनमने से) हूं-हूं-तो फिर हुआ क्या?

पंडितानी—(ताव से) होता क्या···मिले।

सुनयना—(आशा से) मगर कैसे? किस उपाय से? यह भी तो··· बहन।

पंडितानी—उमा!

उमा—(पलट कर) हां-मां। (सुनयना से फिर जैसे रिकार्ड चल

पड़ा हो) चाची क्या पूछती हो, क्या उपाय और क्या असर कि कुछ न पूछो। एक ओर अम्मा, एक मंदिर से दूसरे में, और दूसरे से तीसरे में मानता करती चलीं और दूसरी ओर एक मानता, दूसरी मानता और तीसरी मनता में खिंचे हुए बप्पा भटकते फिरें। ऐसा चक्कर हुआ कि चाची…(सांस लेती है)

सुनयना—(हाथ जोड़ती हुई) सच्ची, 'मानता में' बड़ा जोर होता है पँडितानी।

पंडितानी—(आंखें घुमा कर बंद करते हुए) मगर आजकल कौन भरोसा करता है-सत्त-बचन-कर्म से अगर कोई मानता करे तो क्या कहते हैं—उमा !

उमा—(पलट कर) हां-मां !

पंडितानी—याद है जब अपना पिस्सू खो गया था।

उमां—(वैसे ही ताबड़ तोड़) हां-मां ! चाची ! अम्मा ने खट से…।

पंडितानी—(बीच में) पांच आने का महाबीर को, पांच का गणेशजी और पांच का शनीचर देवता का प्रसाद मान दिया कि…

उमा—(आगे बात पूरी करते हुए) बाहर से पिस्सू को लिये हुए घर में आये।

काशी—(घबड़ाये स्वर से) कौन आये, शनीचर देवता ?

उमा—(नाराज़ी से) हाय राम ! नहीं, बप्पा।

सुनयना—(आंखें बंद करके हाथ जोड़ते हुए) धन्य है उनकी माया। भला अब मैं क्या करूं यह भी तो बताओ।

पंडितानी—उमा !

ऊमा—(पलट कर) हां-मां !!

पंडितानी—(सलाहन) तो मानता तो मानी है न तेरी चाची ने-छोटे बड़े गणेशजी देवी ! महाबीरजी ! और…।

उमा—(बात पूरी करते हुए) शनीचर देवता (उंगली ठोडी पर आंखें चकर-मकर) मगर कितने की मनौती ?

पंडितानी—हां यह सोचने की बात है।

[नीचे दादाजी और पुरोहित जी बातें करते हुए ऊपर आते हैं]

पुरोहित—णहीं-गहीं-मैंणे तो कहा कि बश-हें-हें।

दादा—(तपाक के) क्या कहा आपने-सब फिज़ूल है—फिज़ूल।

पुरोहित—(चापलूसी करते हुए) णहीं डाडाजी शुता तो लें कि-हें-हें-हें।

दादा—(वैसे ही अनिच्छा से) तुम पुरोहित बेसिर पैर की बातें कम किया करो हां, तुम्हारे पिता क्या कहते हैं कि...

पुरोहित—(बात काटते हुए) मैं यही तो कहता हूं डाडाजी कि··· (बात कट जाती है)

दादा—(ऊंची आवाज़ में) क्या कहते हो ?

पुरोहित—(आवाज़ ऊपर उठाता है) इशमें किशी का डोश नहीं-शुणिये डाडाजी मैंणे कहा कि इशमें किसी का रत्ती भर डोश णहीं। णा आपणा, णा तुम्हारा, और णा शरकार का—हें हे—हें-शब कोई अच्छे हैं (आंख बन्द करता हुआ) ना-नारायण-नारायण-हड़े राम-राम कृष्ण-गोविन्द, गोविन्द नमो नमः।

सुनयना—(ज़रा सा घूंघट निकलते हुए) दादाजी ! उपाय तजबीज़ हुआ कि नहीं !

दादा—(नाराज़ी के स्वर में) बहू यह दयाराम पुरोहित हैं, मतलब की बात कहने के लिये मिनट दो मिनट नहीं बीसों दिन-महीनों की ख़बर लेते हैं।

पुरोहित—(बीच में) ग्रह णक्षत्रों की बात हो इशमें मजाक णहीं, शमझे डाडाजी हें-हें-लाखों किरोडोंकी गिणती आ जाती हैं (आंखें बन्द करता है) गोविन्द-गोविन्द शामो शामः।

काशी—पंडित जी ! बापू आगरे के स्टेशन पर छूट गये हैं।

पुरोहित—(गद्‌गद् स्वर में) हूं—हूं—हूं (खुश होते हैं)

सुनयना—(घूंघट उठाते हुए) कुछ उपाय बताइये, और नहीं तो यही बताइये (आंखें पोंछ कर) कि वह कैसे हैं।

पुरोहित—(ध्यान करते हुए) गोविन्द हरे। मुरारे-यह तो हमें पहले ही पता था, (आंखें खोल कर तत्परता से) कल गुरू, मंगड़ और वृहस्पति शभी एक जगह आपश में मिड़ बैठे थे, मजलिश तो आज जाके बरखाश्त हुई (दर्शकों की ओर) फिर तो अनिश्ट होणा ही था। हां क्या शमझे डाडाजी (पुकार कर) काशीबाई ?

काशी—(झपट कर) हां पुरोहित जी।

पुरोहित—एक गिलाश (रुकता है) ठंडा शीतड़ जड़ मिड़ेगा बाई।

काशी—(लाचार सी) जो जल ही मिलेगा-गोदाम की चाभियां तो बापू के पास हैं।

पुरोहित—(मन मार कर) नारायण, नारायण।

पंडितानी—(समाचार देते हुए) मैंने कहा कि मनौती तो मान ही दें फिर पुरोहित जी आकर सब संभाल लेंगे। क्यों उमा !

उमा—(पलट कर) हां-मां !! मां ने तो चाची से फौरन ही आते के साथ कहा था-हां।

पुरोहित—(खुश होकर) हें-हें-हें मनौती को तो अंग्रेजीका फश्ट एड समझो, फश्ट एड, हे-हें-हें।

दाद—(झुंझला कर) तो आप आपरेशन शुरू कर दें-न-अब झगड़े टंटे का क्या काम ?

पुरोहित—[पत्रा खोलते हुए] मारे पशीणे के तर हो गया पाणी भी ठीक से नहीं बरशता। [पत्रे में देखता हुआ] और आप लोग आगए मैं आपको तलाश…अंय मेरा चश्मा किधर गया।

[चौंक कर सब जगह ढूंढता है, माथेपर चढ़ा हुआ मिलता है]

पुरोहित—अरे…भाई…आजकल कामकी न पूछो, एक णहीं अणेक बड़े बड़े शरकारी नौकड़ियोंके इम्तहाण हो रहे हैं। रात और दिण-दिण और रात मेरे यहां लोगों का तांता लगा रहता है। कुंडली दिखाणे को हें-हें, फीश डूनी कर डी है (सावधानी

से) हें-हें डाडाजी फीश डूणी-हां (दर्शकों की ओर) शमय णहीं मिड़ता।

दादा—(ऊबते हुए) अच्छा, फीस तो दूनी की आपने पर काम इकहरा ही शुरू हो।

पुरोहित—(तत्परता से) तो यह बतड़ाइए कि जिश शमय नाथूराम जी जाते रहे...।

सुनयना—(चीख कर) हाय राम ! यह क्या कहते हो पुरोहित जी।

पंडितानी—(चौंक कर) उमा !

उमा—(पलट कर) हां-मां !!

पंडितानी—(आंखें घुमा कर) अशुभ बात है।

उमा—(उनसे ज्यादा आंखें घुमा कर) हाय राम ! बात बिल्कुल अशुभ है।

काशी—(चोटी एक आगे एक पीछे करते हुए ताव से) सिली, मुझे यह दकियानूसी ख़याल कतई पसन्द नहीं। मैं तो यही कहूंगी कि···।

दादा—(बात काट कर) अच्छा आप कुछ न कहिये। बस खामोश रहिये (पुरोहित से) असल में नाथूराम ने समझा कि सब कोई गाड़ी पर नहीं जा पाये और वह स्टेशन के बाहर गये उनको मालूम न हुआ कि भीड़ की वजह से अलग अलग डिब्बों में सब बैठ गये थे। यही घोटाला हुआ और वह रह गये। गाड़ी चल दी।

पुरोहित—(आंखें चश्में के अन्दर से चमकाता हुआ) खूब शमझता हूं—शब-इशमें किशीका डोश णहीं, णा आपणा-खैर तो···!!

पिरथी—(पास जाकर) 'तो' क्या पुरोहित जी।

पुरोहितजी—(आंख बन्द करके गिनती करते हुए) मीण, मेख, वृश्चिक, मकर क्या कहते हैं (आंख खोल कर) जिश शमय वह खोये थे तो···उनका मुख किधड़ था।

दादा—(दर्शकों की ओर) क्या आदमी से पाला पड़ा है।

पिरथी—(सोच कर) बाहर की तरफ।

पुरोहित—(रोकता हुआ) णहीं-णहीं, किश दिशा में था—

काशी—(सोच कर) उत्तर को रहा होगा।

सुनयना—(घूंघट ज़रा सा उठाते हुए) नहीं उत्तर को कैसे, दाहिने हाथ की तरफ दक्षिण नहीं हुआ।

दादा—(आगे आकर) मुंह दाहिनी तरफ था (सोचता हुआ) स्टेशन का फाटक पूरब में...तो....समझ लीजिये।

सुनयना—(बात काट कर) मैं तो कहूंगी कि, पश्चिम को था ..क्योंकि उसी ओर सूरज डूबा था।

काशी—(ऐलानिया) मैं बताती हूं—उनका मुंह किसी दिशा की तरफ नहीं था।

सब—(क्या-क्या-क्या कहा, यानी···)

दादा—(बिगड़ते हुए) यानी के यानी के···काशी! नाथूराम का मुंह किसी ओर था ही नहीं ! इसके क्या मानी। क्या शरारत है !

काशी—(समझाते हुए) कबूतरों की पांते लगी थीं, इसीलिये मुंह ऊपर ही उठाये हुए थे बापू। इस डर से कि कहीं कोई कपड़े न खराब कर दें।

पुरोहित—(मगन होकर) शमझा-शमझा-पूरब णा पश्चिम णा उत्तर णा दक्खिण (धीरे-धीरे विवशता से) बड़ी मुश्किड़ है। मगर (तत्परता से) मुझसे दयाराम से, बचकर कहां निकड़ेंगे हें-हें-हें (दादाजी की ओर) डोहरी फीश है। (जल्दी से) यूं ही णहीं, डाडाजी इशमें किसी का डोश णहीं णा-जाणे दीजिये।

दादा—(बर्दास्त करते हुए) सब सुन रहा हूं पर आप कुछ काम भी करते चलें तो तबियत लगी रहे, नहीं तो ख़ामख़ा गुस्सा आने लगता है। एक हमारा भी ज़माना था कि पहले काम, फिर काम और उसके बाद में भी काम। हां और एक तुम लोग हो···

पिरथी—(बीच में) काम के नाम बिल्कुल नाकाम···।

दादा—(डांट कर) तुम चुप रहो।

सुनयना—(विकलता से) जाने मुंह में दाना भी गया होगा या नहीं। सब सामान यहां है पर ताली नहीं, और वहां तालियों कागुच्छा है पर सामान नहीं।

पुरोहित—(तत्परता से पत्रा देख कर) शो तो है ही, शणि बता ड़हा है कि हाथ में ड़ोहा होणा चाहिये। मैं तो पहड़े ही जणता था। हें-हें-शणि-याणी ताड़ियों का गुच्छा—क्यों डाडाजी ?

पिरथी—(अलग सुनयना से) मैं तो यही कहूंगा कि मैं या दादाजी फ़ौरन एक गाड़ी से चले ही जांय—तो सब ठीक हो जायेगा।

पुरोहित—(बीच में) रुको…(आंख बन्द करता है) गोविन्द… गोविन्द हरे मुरारे

सुनयना—(पिरथी से) मैं भी यही ठीक समझती हूं।

काशी—(सोच में) बेचारे बापू के पास तो पैसा भो नहीं है।

पंडितानी—(आंखे नचा कर) उमा !

उमा—(पलट कर) हां-मां !!

पंडितानी—(बैसे ही) पास में एक पैसा नहीं !

उमा—(हाथ ठोडी पर) हाय राम…पर मनौती तो…

पंडितानी—(खांस कर) वही तो घबड़ाने की बातही अब कुछ नहीं ?

पुरोहित—(चीख कर) कुछ णहीं—अभी फेंकता हूं रमड़…शब अंधेरा छट जायेगा मेरी आंखें शाफ शाफ देखणे लगेंगी - ऐं - ऐं - ऐं ये माड़ा।

[पत्रा पटकता है]

दादा—(चौंक कर) क्या हुआ।

पिरथी—(वैसे ही) क्या मारा पुरोहित जी !

काशी—(घृणा से चीख कर) हे राम चींटा ! अरे राम-राम, हाय राम हत्या करदी आपने।

पुरोहित—(अनसुनी करके) णवम में दशम तथा तृतीया का शमावेश

हो कर शप्तम में (दूर देखते हुए) चन्द्रमा बैठे झांक रहें हैं, हा-हा-हा (हंसता है—एक नाटकीय ढंग से) कोई खड़ा है, जरूर···खड़ा है।

दादा—(आवेश में) कौन कहां...कहां खड़ा है। (देखता है)

पुरोहित—[वैसे ही] किसी ड़ोहे की बेन्च के पाश शणि है शणि।

दादा—तो नाथूराम कहां है ?

सुनयना—[बेचैनी से] ठीक से देखिये उदास हैं क्या ?

पुरोहित—[अपने में रमा हुआ] ड़ोहा ही तो है; ग्रह शामणे छाया डाल रहे हैं-शनि की काली छाया·· शायद भोजण णहीं मिला शान्ति णहीं णहीं व्याकुड़ हैं।

सुनयना—[बेकली से] तव क्या होगा। क्या ज्यादा भूखे हैं ?

पिरथी—[परेशानी से] मैं फौरन खाना ले जाता हूं-मां।

काशी—[लाचारी से] भूखे और पास में पैसा नहीं। अब क्या होगा ?

पुरोहित—[अपने में रमे हुए] ए–ए–ए शब कुछ शाफ दीख रहा है बिल्कुड़ शाफ। मंगड़ और गुरु की शरण में शणि की छाया तड़े, हा - हा - हा [अंतरिक्ष की ओर] अब कहां जाओगे··· हा - हा - हा।

काशी—[शक से] पंडितजी–कोई ड्रामा तो नहीं कर रहे हैं आप।

पिरथी—[नाराज़ी से] ड्राभा ! में तो कहता हूं कि पगला न गये हों।

सुनयना—क्या दिख रहा है पंडित जी ?

दादा—[बिगड़ते हुए] ए मिस्टर ! ज़रा बात साफ-साफ करो हां, ज्योतिष में न बोलो। क्या कहते हैं··तुम्हारे पिता मेरे दोस्त थे उनके कान खींचा करता था में-कान-समझे ?

पुरोहित—[चौंक कर] शो तो है ही, इशमें ण शरकार का डोश है ण आपणा। खै़र, याणी कि नाथूराम को मैं शाफ शाफ देख रहा हूं।

पिरथी—[चमक कर] कौन बापू को ?

काशी—[वैसे ही] नहीं सच, 'बापू' कहां ? बताओ भाई।

पंडितानी—[तत्परता से] उमा !

उमा—[पलट कर] हां-मां !!

पंडितानी—[लम्बी सांस लेकर] तुम्हारे चाचा मिल गये, ढूंढ़ लिया पंडितजी ने।

उमा—[हाथ जोड़ कर] शनीचर की छाया में। सब मनौती का असर है, मनौती का [आंखे बंद करके] हे शनीचर बाबा !

सुनयना—हाय कुछ दाना पानी पेट में गया कि नहीं। बोलो पंडित जी।

पुरोहित—[अपने रंग में] चाभियों का गुच्छा तो शायदा डिख ड़हा है। शाफ-हां हां-हां शणि का अशर है डाडाजी शणि की शान्ति होणी चाहिये।

दाद—बता चलो शनि की शान्ति !

सुनयना—[उतावली से] बताओ न पुरोहित जी।

पुरोहित—[मगन मन] उशमें क्या है-पन्द्रह शेर गुड़, डाणे वाड़ा, ग्यारह शेर तेड़ और तुम्हारा बेटा…

पिरथी—[घबरा कर] 'मैं' पुरोहित जी ? मैं ?

पुरोहित—[नाराज़ी से] मैंणे कहा बेटा जिये। छः ड़ोहे की चद्दरें बश। हें - हें - हें।

काशी—[दर्शकों से] लगता है घर की छत टपकती है…उसी का इन्तज़ाम हो रहा है॥

पिरथी—[समझाकर] नहीं कन्सल्टिंग रूम बनाने का…जिसमें वह बड़े अफसर बैठकर कुंडली दिखायेंगे, जो बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियों के लिये इम्तहान दे रहे हैं।

पुरोहित—[ऊंची आवाज़ में] डेख ड़हा हूं…चेहरे पर मुर्दणी छाई है शब शणि देवता का अशर है शणि का।

पंडितानी—उमा !

उमा—[अपने ढंग में] हां-मां

पंडितानी—[हाथ ठोड़ी पर] सब शनि का असर है शनी का।

उमा—[नकल करते हुए] हाय राम। शनी की मनौती दूनी कर देना ही ठीक होगा।

काशी—[हाथ हिलाती हुई] पुरोहित जी! मैं तो समझती हूं कि इसमें कुछ सार नहीं। [पिरथी से] भइया तुम तो इसी गाड़ी से आगरे चल दो।

पिरथी—जाने कब से तो मैं यही कह रहा हूं पर कोई सुने तब तो।

दादा—[समझाता हुआ] तुम लोग कुछ समझ बूझ वाली बातें तो किया करो। ज्योतिष भी एक मानी हुई विद्या है उस पर भरोसा होना चाहिये।

पिरथी—ज्योतिष विद्या तो ठीक है पर यह ज्योतिषी नहीं।

पुरोहित—[ऊंची आवाज़ में] कहां जाओगे···बच कर मुझ से? शणि जी।

पिरथी—[पुरोहित की ओर देख के] हां यही तो मैं भी सोच रहा हूं [हाथ जोड़ कर] शनि देवता।

[बाहर रिक्शे का भोंपू सुनाई देता है]

सुनयना—ज़रा देखना तो कौन है।

दादा—देखना तो काशी!

काशी—[चिल्ला का] अरे बापू हैं! बापू!

पिरथी—[चौंक कर] अरे हां, बापू तो हैं ही। [नीचे जाता है]

दादा— वैसे ही] नाथू! यानी कि नाथूराम!!

सुनयना—[हाथ जोड़ते हुए] धन्य हो भगवान।

पंडितानी—[हड़बड़ा कर] उमा!

उमा—[वैसे ही] हां-मां!!

पंडितानी—तेरे चाचा आ गये।

उमा—हाय राम! सच्ची आ गये। [हाथ उठाकर] क्या मनौती का ज़ोर है!

पुरोहित—[अपने में मगन] शब जाणता था···मैं शब जाणता था...
जोगबड़ से खिंचे चड़े आयेंगे। खिंचे···क्यों डाडाजी।

पिरथी—[आता हुआ] क्या कहा योग बल से खिंचे चले आये ? बापू कहते हैं कि वह उसी गाड़ीसे आये हैं जिसमें हम सभी थे। दौड़ कर बैठ गये थे–पर सो गये–इस लिये एक स्टेशन आगे पहुंच गये अब रिक्शे से आये हैं। वाह पुरोहित जी बाह।

पुरोहित—[सोचता हुआ] मगर शणि की दशा है।

दादा—[बिगड़ता हुआ] तुम चुप रहो···पुरोहित ! तुम्हारे पिता···मेरे क्या कहते हैं कि दोस्त थे···मैं उनके कान···।

सुनयना—[ऊंची आवाज़ में बिगड़ते हुये] मैं कहती हूं—कि आ गये—भला कम से कम तालियों का गुच्छा तो मुझे दे दिया होता। न जाने कब से सब ऐसे ही बैठे हैं।... यह भी कोई बात है···कि...।

यह बात वह बात

—:*:०:*:—

समय : रात के आठ बजे

स्थान : नाथूराम के घर का एक कमरा

निर्देश :—

कमरा साधारण रूप से सजा हुआ। कुछ तस्वीरें दो एक कैलेंडर, खूंटियों पर कपड़े, अलगनी पर साड़ियां, कुछ मोढ़े, एक तख़्त जिस पर सुफेद चादर, एक पान दान जिसको सामने रक्खे हुए सुनयना पान लगाती दिखें। सारा कथानक एक ही जगह पर होता है; यदि संभव हो तो केवल एक खिड़की के अतिरिक्त दांई ओर कोने में एक दर्वाज़ा और दिखाया जाय; जो कि अंत में जब माया भाग कर आते हैं तो-दरवाज़ा खुलते और ज़ोर से बन्द होते हुए दिखाये जाने पर वातावरण की सृष्टि में सहायक हो। वैसे भी बाला तथा नौकर और दादाका प्रवेश तथा प्रस्थान आदि उसीसे दिखाया जाय।

पात्र :—

नाथूराम
सुनयना
काशीबाई
माया
दादाजी
पारबती
नौकर (अधेड़ सुफेद पोश मय साफे के)
बाला (पड़ोस की लड़की लगभग सोलह सत्रह वर्ष की)

यह बात वह बात

—:※:०:※:०:※:—

[नाथूराम तथा सुनयना दोनों आपस में बैठे हुए बातें कर रहे हैं। बात नाथूराम ही कह रहे हैं, सुनयना ख़ामोश पान लगा रही हैं।]

नाथूराम—हमें...वही तो...बार बार...याद आता...है कि क्या दिन थे वो···अहा···वाह···तुम नई नवेली आई थीं इस घर में, और भीड़ का कुछ न पूछो···मौका ही नहीं मिलता था...कि एक बात तो हो जाय। अरे! बात तो अलग···एक···झलक के लिये वह परेशानी...कि···क्यों रानी! याद है न !!

सुनयना—(ख़ामोश—पान लगाना जारी है)

नाथूराम—तुम भी ख़ूब चुप्पी साधे हो! भई वाह !! (एक सांस लेता है) क्या वक्त था...लगता है···मानों बात...कल की ही हो! (चारों ओर देखता हुआ) वैसे ही लोगों से भरा हुआ घर···और मेरे···इधर से उधर फेरे पर फेरे! इधर से उधर! क्यों रानी! इतना चुप क्यों हो! कुछ बोलो न !!

सुनयना—(ज़रा हंस कर) क्या बोले कोई!

नाथूराम—क्या बोले कोई···! (तारीफ़ करते हुए) क्या बात कही है··· कि तबियत फड़क उठी। (प्यार से) भला···इस वक्त क्या सोच रही हो तुम! बताओ न !!

सुनयना—(खामोश-मुस्कुरा कर—चुप हो जाती है)

नाथूराम—यूं ही बैठे बैठे-मुस्कुराती ही जाओगी···कि···और कुछ···! बताओ न रानी...तुम्हें मेरे सर की कसम!

सुनयना—यही तो मुझे अच्छा नहीं लगता। कि हर बात पर तुम कसम रखाने लगते हो।

नाथूराम—(मिन्नत करते हुए) तो बता भी दो न !

सुनयना—सुनोगे ही !! तो सुनो ! मैं यह सोच रही हूं कि तुम्हारे सर पर बाल अब फिर नहीं उगने के ! चाहे जितना शीर्षासन करो तुम ! सुन लिया !

नाथूराम—(नाराज़ होकर) सुन लिया !! मज़ा बिगाड़ कर रख दिया !! (बातों का अन्दाज़ बदल कर) मैंने कहा··· कि··· आज···आखिर काशी का जन्म दिन है...कुछ इन्तज़ाम वगैरह···भी तो···करना है !

सुनयना—इन्तज़ाम तो हो ही रहा है—पर आपका निर्देशन क्यों रह जाय--वह भी दे डालिये न !

नाथूराम—(बड़बड़ाते हुए) जली-कटी···जली-कटी···वाह री किस्मत ! कहां है काशी—माया...और क्या कहते हैं···

सुनयना—(पुकारती है) अरे माया ! तेरे मौसा बुला रहे हैं।

नाथूराम—(पुकार कर) परबतिया ! (दूर कहीं बर्तन गिरने की आवाज़)

पारबती—(आते हुए) आई बाबू...आई...(आकर छाती पर हाथ रक्खे हुए सांस धौंकनी सी चल रही है) इत्ती ज़ोर से पुकारा ···कि मेरे हाथ से कटोरी...यूं...उछल कर यूं गिर गई।

सुनयना—(ऊबती हुई सी) अच्छा...अच्छा...तो...बस भी कर... अपनी फालतू बकवास।

पारबती—(रूंआसी होकर) अब क्या होगा राम (एक हाथ से बताती हुई, दूसरे में दूसरा बर्तन है) यूं···यूं छिटक कर कटोरी गिर गई।

नाथूराम—(समझाते हुए) अरे तो···गिर गई···होगी। अब-उछल कर-फिर तो-तेरे हाथ में-आने से-रही !

पारबती—(वैसे ही इशारा करती हुई) यूं उछल कर छिटक गई; सारा-ख़मीरा-भी तो-उसी में-था ! बाबू···(रोती है)

सुनयना—(यकायक) क्या कहा···सारा खमीरा गिरा दिया ? (नाथूराम से) लो ! सुन लो ! यह होता है···इन नौकरों को··· सर पर चढ़ाने से···(सर पर हाथ रख कर) अब...काहे की···बनेंगी इमरती !

नाथूराम—(लापरवाही से) तो···चलो···गिर गया···होगा ! (पारबती से) जा भाई पारबती...ज़रा माया और काशी को बुला दे ! जा !

[जाने के लिये पारबती मुड़ती है]

सुनयना—(तेज़ होकर बीच में) टल जा यहां से नहीं तो···

पारबती—(दूसरे हाथ से बर्तन गिरने की आवाज़) (पारबती चीख कर) हाय राम ! ये ऊ.. गया। (रोनी आवाज़ में) अरे अब क्या होगा !!

नाथूराम—(पास जाकर) यह है क्या ?

सुनयना—(पास जाकर) है क्या···सारी क्रीम···। वो भी है नहीं··· (परेशानी के स्वर में) सलाद भी गया।

पारबती—(रोती सी) अब क्या होगा (हाथ के इशारे से बताते हुए) यूं···यूं···गिर गया।

नाथूराम—(कुछ तेज़ होकर) यह सब हमने भी देखा है भाई ! सब कुछ अपनी आंखों से···अब तू और न बता···तू तो···इसे समेट कर फ़ौरन चली जा···यहां से···नहीं तो (रुक कर-यकायक नरम होकर) मेरे मुंह से···कोई कड़ी...बात न कहीं निकल जाय।

[काशी बाई अन्दर आती है]

काशी—यह क्या उठा-पटक तोड़-फोड़ लगा रखी है पारबती...(कमर पर एक हाथ का ज़रा सा सहारा देकर, एक चोटी पीछे झटके से फेंकती हुई) यह कौन सा तमाशा हो रहा है आख़िर !

पारबती—(रोने के स्वर में आंखें नचाती हुई) यूं…यूं…छिटक कर...कटोरी गिर गई ! अब क्या होगा, बीबीजी।

[माया अन्दर आते हैं। बात करने में दोनों गदेलियां रगड़ कर हंसते हैं]

माया—हें-हें-हें मौसा जी...आज तो मैं मालिश...ज़रूर करूंगा। क्यों मौसीजी ! ऐसी तरकीब सीखी है ! प्रिन्सिपल साहब ने कहा माया—अब तो बस तुम्हीं कुछ करो। मैंने…कोट उतारा…हाथ बढ़ाया…(हाथ से बताता हुआ) ये…ये... पिंडलियां थीं उनकी। दो झटके में बस…(ताली बजा कर) ये गया...पट से।

काशी—(चिहुंक कर) हाय राम, हड्डी तोड़ दी न ! माया ! मैं जानती थी।

माया—(हंसते हुए) कहां की हड्डी...सर का दरद यूं...गया…कि…

काशी—(आश्चर्य से) यानी माया...रिसर्च की हद कर दी तुमने। क्या कहे कोई ! (दर्शकों की ओर) यानी कि…सर दर्द के लिये…असल में मालिश…पैरों की करनी चाहिये। (माया की ओर) क्यूं न बीरन ?

माया—(हथेलियां रगड़ कर, खुशी के स्वर में) हें-हें-हें नस की पकड़ चाहिये...फिर यूं…जाता है दर्द...चाहे वो सर में हो… पैर में…पीठ में…या…हो...रीढ़ में।

नाथूराम—(सर पर हाथ फेरते हुए) माया ! बेटा ! तुम ज़रा चुप नहीं रह सकते ! ज़बान को ज़रा तो आराम दिया करो ! जब देखो तब कतरनी...की तरह…चलती रहती है। (हाथ सर पर से हटा कर) कहते हैं ख़ाली तो कतरनी भी नहीं चलानी चाहिये।

माया—हें-हें-हें-मौसाजी मैंने तो…सिर्फ यही कहा…कि…(यकायक) मालिश कर दूं ?

नाथूराम—(घबड़ा कर) जी···नहीं। (नाराज़ी से) सुनो सुनयना...

सुनयना—(उसी तरह) क्या है! मुझसे त्योरियां चढ़ा कर बात न की जाया करे...हां !!

नाथूराम—(घबड़ा कर) हां! वही तो मैं कहता हूं (आवाज़ बदल कर) पिरथी, कहां गया।

सुनयना—ज़रा और ज़ोर से चिल्लाइये! शायद आवाज़ दिल्ली तक पहुंच ही जाय!

काशी—(नाथूराम की ओर मुख़ातिब होकर) बापू–पिरथी तो यूथ फेस्टिवल में गया है न।

नाथूराम—(शरमा कर) हां-हां। सब मालूम है मैं तो यूं ही···

सुनयना—(बात काट कर) पुकार लगाने या आवाज़ की बुलन्दी के लिये रियाज़ कर रहा था। मेरी समझ में नहीं आतीं यह सब बातें।

नाथूराम—(चेतावनी के स्वर में) यही तो मैं कहता हूं...कि अगर किसी को कोई बात पसन्द न आये तो फौरन कहे-मुझे पसन्द नहीं। मैं इस घर में यही चाहता हूं कि सब काम सबकी राय से ही हों। तो अब बताओ कल शाम की पार्टी का बन्दोवस्त कहां होना चाहिये।

सुनयना—यहीं इसी कमरे में होगा...इन्हीं मेज़ों पर और क्या ?

काशी—(चोटियां सहेजते हुए) यह बात मुझे पसन्द नहीं ?

नाथूराम—(चौंक कर) अयं !

सुनयना—(आंखें तरेर कर) क्या कहा ?

काशी—(आंखें बन्द कर के) मुझे पसन्द नहीं। (आंखें खोल कर) इसलिये कि यहीं लोग बैठेंगे···खाने पीने की चीज़ें...सब के लिये ढो-ढो-कर लाने के लिये महज़ मैं ही हूं...भइया तो हैं नहीं।

नाथूराम—(बात काट कर) बस···इसमें क्या बात है...वाह, सामन पहले ही लगा देना। मसला हल हुआ।

काशी—(हाथ झटक कर) ना—कहीं—मसला हल हुआ बापू ! इस तरह तो ये होगा…कि पहला आदमी आते ही खाना शुरू कर देगा…तब।

सुनयना—(बिचारते हुए) ठीक कहती है काशी। (उंगली ठोड़ी पर) फिर क्या होगा ?

नाथूराम—(ज़रा तेज़ी में) कैसे कोई ताबड़ तोड़ खाना शुरू कर देगा...बातें भी तो करेगा…भला मानस…औरों का इन्तज़ार भी तो करना होगा। कुछ एटीकेट...।

काशी—(कमर पर हाथ) एटीकेट वगैरह तो ठीक है…मगर उसका दिल बापू ! उधर ही लगा रहेगा और इस तरह बातों का सिलसिला बस यही समझो कि…(नकल करती हुई) भई अच्छे रसगुल्ले अब कहां ! (लार घुटक कर) अच्छी चीज़ दूर से ही पुकार पुकार कर अपनी सफाई देती है (और लार घुटक कर) आपने कहां से मंगवाये रसगुल्ले बढ़िया दीखते हैं (घबड़ा कर ज़रा संभलते हुए) अमरीका आज कल अपने पूरे…क्या कहते हैं—कि हां (सूंघते हुए) पकौड़ी बनती जान पड़ती हैं-असली घी होगा क्यों ? क्या बात है !! (फिर सोचकर) स्वेज़ में फिर काम शुरू हो गया फिर गये...अरे-रे-रे यह दही बड़े हैं क्या !! तभी जाने कब से—एक मक्खी उस पर भिनभिना रही है। दही बड़े तो बस तुम्हारे यहां (फिर एटीकेट)…वैसे नासेर ने स्वेज़ के मसले वगैरह वगैरह… (हताश होकर) वगैरह—यही होगा बापू ! और कुछ नहीं।

माया—(हाथ उठा कर) मौसाजी…मैं बताऊं कालेज वाली तरकीब कीजिये न।

काशी—कालेज वाली तरकीब तो एक ही होती है, कि सामान सजाने के लिये लाते लाते चटकर जाइये ! इस तरह प्लेटें ही प्लेटें सजानेके लिये रह जायेंगी—सामान पहले ही खत्म। न रहेगा बांस और…

माया—(बात काट कर) मौसाजी ! देखिये इनको···ये मुझे···ख़ैर मैंने कहा कि एक बड़ी सी चादर से ढ़क दीजिये न-सब सामान को-मेज़ पर लगा कर।

नाथूराम—(सर हिला कर) ऊं···हूं।

काशी—(वैसे ही) बिल्कुल ऊं...हूं !!

सुनयना—(सांस लेकर) लोग पूछेंगे। ये चादर के नीचे क्या है ? क्या कोई सरप्राइज़ है ? कोई कहेगा कि मेज पर कौन सो रहा है ? और ज्यादातर तो उसको उलट कर देखने जायेंगे··· और जायेंगे···फिर जायेंगे। तो फिर···।

नाथूराम—तो फिर···चाय का इन्तज़ाम दूसरे कमरे में हो।

काशी—(सर हिला कर) यही ठीक होगा। मगर (सोचते हुए) इस कमरे में भी तो कुछ होना चाहिये। आखिर यहीं आकर लोग बैठेंगे !!

माया—(एका एक) मौसाजी- एक वेराइटी प्रोग्राम कर दूं ! एक से एक गाने–डांस–प्ले–मज़ा आ जायेगा। पार्टी चमक उठेगी... ऐसे ऐसे लोक गीत···कि लोग···खाना पानी···भूल जांय।

सुनयना—(ऊबी आवाज़ में) नहीं···माया ! कौन गायेगा गाने··· और डांस...

माया—हें-हें-हें-मौसी जी वैसे काशी और नहीं तो एक पोइट्री रेसीटेशन कर दे···गीत न सही...लोकगीत.. मैं···ही···हें-हें-हें। (हथेली रगड़ता है)

काशी—(बनावटी नाराज़ी से) आप से मायाजी ! लोक–गीत गायन की···फ़रमाइश ··· तो उस समय की जायेगी...जब कि सामान खत्म···और मेहमानों की भूख ज्यादा उभरती दिखेगी। एक...लोकगीत में ही···दुश्मन···भागते नज़र... आयेंगे। क्यों बापू ?

माया—तुमको मेरे पर भरोसा नहीं काशी···मौसाजी ! गाऊं···एक लोकगीत···(खांसता है)

नाथूराम—(हाथ उठा कर) ज़रा थम जा तू ! बेटा माया ! अभी नहीं ।

सुनयना—इस कमरेमें एक बड़ी मेज प्रेज़ेन्ट्स के लिये-हां ! कहो कैसा रहेगा ?

नाथूराम—(उछल कर) सोलह आने-की-बात कही है-तुमने सुनयना !

माया—मगर उस पर लिख कर टांग देना चाहिये-नहीं तो...

काशी—(सोचते हुए) जो लेकर आये भी होंगे वह भूल से वापस लेते जायेंगे, क्यों ?

नाथूराम—मज़ा आ जायेगा । हां, याद है पिछली बार···जाते जाते पिरथी के जन्म दिन पर···लोकनाथ एक पुड़िया में लेमन ड्राप देकर चल दिये थे। अब सबके दिये गए प्रज़ेन्ट्स साफ दिखेंगे !

काशी—(हंसती हुई) लेमन ड्राप...वो...भी···कमल के डिब्बे से निकाल कर लाये थे, ऐसा लगता है कि देने के मौके पर दुनियां की कंजूसी उभड़ कर चाचा लोकनाथ के पास ही आ धमकती है ।

सुनयना—(हाथ पैर पटकते हुए) हां...वही तो···कैसे कैसे लोग हैं !

माया—हें-हें-हें-काशी बहिन ! मेरे कोट का बटन टांक दो न । जाने कबसे कह रहा हूं ।

काशी—(खीझ कर सुर सहित) यह बात—कोट का बटन, वह बात कोट का बटन···कोट का बटन-कोट का बटन ।

सुनयना—तो क्या हुआ...लगा क्यों नहीं देती···भली मानस !!

माया—हां मासी, मैंने कहा एक बटन लगा दो और···(बात कट जाती है)

काशी—(शिकायतन) बापू, अपना घर सचमुच घर ही है ··आदमियों का···या कि ज़िन्दा अजायबघर का...कोई भूला बिसरा हिस्सा···

नाथूराम—(नाटकीय ढंग से रोकते हुए) बेटी-मेहमान बुरा मान जायेंगे-और उनसे ज्यादा तेरी मां...(अलग) वैसे ख़याल यही मेरा भी है।

सुनयना—(फटकारते हुए) क्या कहा ? आज यहां इस तरह की बातें हो रही हैं···और कल को दूसरे के यहां जायेगी तो...

काशी—(रोकर) सब मेरे ही पीछे पड़ जाते हैं मेरा-मेरा-मेरा (फूट पड़ती है)

माया—मौसाजी-बुरा हुआ (प्यार से) बहिन ! पोंछ डाल आंसू ! नहीं लगेगा बटन माया के कोट में।

[बाला दौड़ती हुई आती है]

बाला—चाची—चाची। देना जल्दी टिंचर।

सुनयना—क्या हुआ बाला !

बाला—घाव लग गया।

नाथूराम—(उत्तेजित स्वर में) घाव···काहे से, बाला ?

बाला—तलवार से···और क्या···जल्दी करना चाची।

नाथूराम—(घबड़ा कर) तलवार से ! अरे बाप रे ! सुनयना !!

सुनयना—(तत्परता से) अभी लाई बेटी···अभी लाई। तलवार से घाव मगर···

[जाती है]

काशी—(हिचकी लेते हुए) क्या सच···सच्ची मुच्ची की तलवार से ?

माया—(घिग्घी में अटके हुए) मौसाजी ! यह क्या कहती है !! तलवार से...तलवार का खेल ठीक नहीं। (सचेत होकर) उस बार दुर्गादास का पार्ट था...ऐसी तलवार चलाई··· ऐसी···ऐसी···(पैंतरा बदलते हुए) ये पैंतरा बचो···वार-पैंतरा···बचो बचो···वार···वार···वार···वार (ड्रैमेटिक ढंग से रुक कर पोज़ देता है) खटाक।

सुनयना—(आते हुए) अब ये क्या हुआ ?

नाथूराम—(दर्दीले स्वर में) क्या किया माया मेरे ..

माया—घ-घाव लगा घाव-मेरे दाहिने कान के नीचे (दिखाता हुआ) देखो भाई, देखो। देखो।

काशी—(देखते हुए) घाव अगर लगा भी होगा तो बेचारी तलवार के। (अच्छी तरह देख कर) आपके-कान के नीचे तो वही चेचक के घाव हैं जो कि चेहरे पर·· और भी जगह...आखिर हैं ही।

नाथूराम—(बाला से) बेटी बाला! मगर तुम्हारी मां को तलवार चलाने की ऐसी क्या ज़रूरत पड़ गई। तेरे बाबूजी कहां थे?

सुनयना—(दर्शकों की ओर) लो सुन ले कोई...सब कोई शर्मा कर चुप हो जायेंगे। तलवार की ज़रूरत क्यों पड़ती है ? बाबूजी कहां थे (नाथूराम से) इस 'वीर प्रसविनी' भूमि में... मर्द ही···नहीं···औरतें भी...समय आने पर तलवार संभाल सकती हैं। कुछ अपना घर··न समझ लीजियेगा। (बाला से उत्साहित करती हुई) बेटी···बाला·· फिर।

नाथूराम—(कान पर हाथ रख कर) इस घर में तलवार की ज़रूरत ही कहां !! एक डांट-एक इशारे . एक·· क्या कहते हैं···(खांस कर) तो क्या हुआ बेटा बाला··बोल न!

माया—(कुछ अटकते हुए) ड-डा-डा-डाकू कितने खेत रहे।

बाला—(अचानक घबरा कर) डाकू! हाय राम डाकू कहां हैं ? अब क्या होगा ?

पारबती—(भराई हुई आती है चीख कर, आते आते प्लेट गिरती है। सर पर कपड़ा बंधा है) हाय दई डाकू। अब क्या होगा ? मैं जाऊं कहां ? (और ज़ोर से) डाकू चारों ओर डाकू (इधर उधर आंखें फाड़ कर देखती है)

माया—(मर्दानगी से) कहां हैं–कोई मुझे तलवार (जल्दी से) चक्कू, डंडा कुछ भी दो। एक एक को काट डालूंगा। (इधर

उधर आंखों पर दोनों हाथों को आड़े करके देखता है फिर अचानक कूद कर) मौसाजी ! आप दरवाज़े को संभाल लीजिये। मौसीजी ! आप खिड़की से बाहर देखते रहिये एकटक। मैं उधर छतवाले दरवाज़े के पास मोरचा लेता हूं। (ऊंची आवाज़ में मर्दानगी से) सबको देख लूंगा.. क्या समझा है...माया से पाला पड़ा है टुकड़े टुकड़े कर दूंगा...(स्टेज पर मुस्तैदी से चहल कदमी करके निरीक्षण करता है)

काशी—मगर किसके टुकड़े कीजियेगा और काहे से ? छत पर इस समय कोई न होगा सिवा बंदरों के और आपके हाथमें चाकू छुरी, नहीं-दाल चलाने का चिमचा मात्र ही है। अब बोलिये ?

पारबती—(रो पड़ती है) हाय दई अब क्या होगा ?

बाला—(चौंक कर) चाची टिंचर। रात ज्यादा न हो जाय मैं चली।

नाथूराम—(ज़ोर से) अरे यह पागलों का अखाड़ा बन्द करो न। क्यों डाकू डाकू का शोर मचा दिया, कोई सुनेगा तो भागा हुआ चला आयेगा।

माया—(अपनी धुन में) मौसीजी ! एक एक से निबट लूंगा... (एकाएक झुक कर) आपका आशीर्वाद चाहिये। (उछल कर) जय मां दुर्गे।

नाथूराम—(परेशानी में) जीते रहो मेरे लाड़ले...मगर यहां कहां ..

बाला—(फिर घबड़ा कर) चाची टिंचर दो मां ज़ोर ज़ोर आंसू बहा रही थीं।

सुनयना—(तत्परता से) अभी दूसरी शीशी में निकालती हूं। (एकाएक रुक कर) मगर वीर रमणी की आंखों में आंसू ?

नाथूराम—(छेड़ते हुए) आंसू ? तो क्या हुआ,...वार सहना आसान नहीं रानी !

पारबती—(घबड़ाई हुई) हाय अब क्या होगा...तलवार···डाकू।

नाथूराम—(परेशान होकर) तू चुप रह माई। हां ! तो हुआ क्या बाला बता तो सही।

बाला—(इधर उधर देख कर) बाबूजी ने दशहरे पर तलवार किसी तरह म्यान से पूजा के लिये निकाल तो ली थी पर फिर से रखते न बनी। मां ने ज़रा ज़ोर आज़माइश की और खर्र-र्र...हाय...खून...ही...खून...हो गया।

माया—(अपने गले पर हाथ फेरता हुआ) अर्र...र्र...र्र खर्र जैसे खीरा ककड़ी। वही तो मैंने कहा।

बाला—(ऊंगली दिखाते हुए) उंगली कट गई। तब से ज़ोर ज़ोर रो रही हैं (दृढ़ स्वर में) चाची मैं अकेले कैसे जाऊं !!

सुनयना—जा बेटा माया-तू भेज आ।

माया—मासी (रुकते हुए) मगर आज बहुत अंधेरा है।

काशी—(परेशानी से) तो क्या हुआ...अभी अभी तो आप... डाकुओं को चीरे फाड़े डाल रहे थे।

माया—(दुखी होकर) मगर उजाले में...अंधेरे में यह काम मुझ से नहीं होगा। अपना तो जवाब है।

सुनयना—(उत्साह दिलाती हुई) माया ! जा...तू...तो...अरे ! क्या सच डरता है !!

माया—(मर्दानगी वापस लौटती जान पड़ती है मगर धीरे धीरे) क्या समझ रखा है माया को...चलो बाला। मैं तुमको लंका के छोर में पहुंचाने को तैयार हूं।

बाला—माया जी...मुझे तो गली के पार ही तक जाना है।

माया—तो चलो आगे। जय मां दुर्गे।

[जाते हैं]

नाथूराम—(बेतहाशा हंसता है) क्या खूब तलवार भांजी है। रिकार्ड...टूट...टूट...कर एक तरफ हो गये। (और हंसता है)

सुनयना—(बिगड़ती हुई) पारबती ! यह क्या तमाशा है। बात की बात में यह एक प्लेट और तोड़ कर रख दी तूने। यह कौन सा नाटक है आखिर माथा तो ख़राब नहीं।

पारबती—मैं शीशा साफ कर रही थी कि लगा कि (डर कर देखते हुआ) कोई सूरत उसमें दीख रही है ! डाकू ! हाय राम !!

काशी—सूरत तेरी अपनी ही होगी।

पारबती—सर पर कपड़ा बंधा हुआ था...बड़ा सा पगड़ा।

सुनयना—(डांटते हुए) तो क्यों बांध रक्खा है···यह सर पर··· झाड़न।

पारबती—(रूंआसी सी) देखो बाबूजी ! ये मुझे.. कुछ न कुछ··· बराबर···कहे...जा···रही हैं।

नाथूराम—(समझाते हुए) अरे···जाने...भी···दो···न···अब ! जा माई-अपना काम कर। अब यह झाड़न···सर से उतार दे जिसमें तुझे डर न लगे और कोई चीज़ भी न गिरे। हां ! जा अपना काम कर।

[जाती है]

नाथूराम—इस तरह क्यों नौकरों के पीछे पड़ी रहती हो। हज़ार बार समझा चुका हूं। लेकिन बस...जो मुंहमें आया कह बठीं।

सुनयना—तो जो मुंह में आये वह नौकरों से भी न कहा जाय...तो किससे कहा...आखिर।

नथूराम—(हंसकर) अरे बस ! उसके लिये काशी है, पिरथी है और मैं जो हूं। आप प्रैक्टिस जारी रखिये। यह ऐसे आसामी हैं रानी ! कि बेचारे कहीं भाग भी नहीं सकते।

सुनयना—(नाराज़ी से) यह बातें और किसी से की जांय। नौकर एक नहीं हज़ार मिलते हैं। दादाजी ही एक लाने को कह गये हैं।

नाथूराम—और आ भी गये। उन्हीं की आवाज़ है।

दादा—(आवाज़ ऊपर उभरती है अन्दर आते हैं) तो यह बात अच्छी तरह से समझ लो बच्चू ! कि काम जी लगा कर करो और पैसे लो खरे-हां ! नहीं तो पाला दादाजी से पड़ा है ! क्या समझे !

नौकर—(आता हुआ) सब समझ लिया सरकार ! (गिनती करता हुआ) झूठ नहीं बोलना...सुबह चार बजे उठना.. सबके सोजाने पर सोना...चोरी कभी...कभी नहीं...नीयत साफ, ईमान धरम से काम...बेकार की बातों से दूर...काम से काम...पान तमाखू बीड़ी से कोई वास्ता नहीं...मालिकों से आंख न मिले ···कोई शिकायत नहीं और...

दादा—(बस बस) नाथूराम ! मैं यह नौकर तुम्हारे हवाले करता हूं।

नाथूराम—बड़ा अच्छा किया दादाजी अपने।

सुनयना—[निरीक्षण करते हुए] देखने से तो मातबर मालूम होता है।

काशी—[मुंह चढ़ा कर] मुझे नहीं जंचता।

नाथूराम—क्यों ?

काशी—इसके कपड़े ज़रूरत से ज्यादा साफ़ हैं।

सुनयना—[देख कर] यह तो है !!

दादा—(सोचते हुए) बात तो मुझे भी खटकती है-पर (नौकर से) मैंने कहा···क्योंजी...तुम्हारे कपड़े क्यों इत्ते साफ़ हैं ? (तेज़ होकर) जवाब दो।

नौकर—इसलिये-कि मैं उनको साफ रखता हूं।

नाथूराम—मगर इतने साफ क्यों···यह तो गड़बड़ी की बात है !

दादा—इसके पहले मिस्टर ! कहीं काम तो किया होगा न ?

नौकर—(विनम्रता से) कहीं क्या...हर कहीं। इसके ठीक पहले एक लांड्री में काम करता था।

दादा—(ज़ोर से) वही तो...मैंने कहा···कि हां—देखा नाथूराम ! मामला साफ़ हो गया। कपड़े इसलिये साफ़ हैं।

सुनयना—(सावधानी से) तो तुमको मिलना क्या चाहिये ?

दादा—वो तो सब ठीक ही है। यानी वही जो मिलता है।

नाथूराम—सो तो है ही। (नौकर से) अपना घर का सा काम समझो।

नौकर—(सर खुजाते हुए) फिर भी सरकार कुछ बता दिया जाय।

दादा—हां! हां! यही बारह रुपये महीने और खुराक या बाइस रुपये सूखे-और क्या...

नौकर—(हंसता है) वाह सरकार...यह क्या गरीब आदमी के साथ मखौल करते हैं।

दादा—(बिगड़ कर) यानी क्या कहा...हम तुम्हारे साथ...मखौल करते हैं...यह बदतमीज़ी....मिस्टर.. मुझसे नहीं चलेगी।

नाथूराम—(हंसते हुए) जी...हां...बदतमीज़ी.. तो.. नहीं चलेगी। चाहे किसी की हो।

नौकर—(एकाएक रुख़ बदल कर) यानी कि सरकार—सुबह चार बजे का उठना-सबके सो जाने पर सोना-चोरी कभी नहीं–नियत साफ़–ईमान धरम से काम-बेकार की एक बात नहीं-काम से काम-पान तमाखू बीड़ी से दूर-मालिक की आंख से आंख कभी न मिले—और इस तरह अठारह घंटे काम के बाद... रुपये 'बारह' !! और...'रूखा !! सूखा ! भोजन !! नहीं... चारा (हंसता है--दर्शकों की ओर) दरअसल बदतमीजी है।

दादा—(और तेज़ होकर) ज़बान चलाते हो !!

नौकर—(सर हिलाते हुए) जी नहीं-अपनी खुश किस्मती पर ज़बान चटख़ाने को जी चाहता है। (आवाज़ ऊपर उठा कर उंगली दिखाता हुआ) पर यह गरीबों पर जुल्म है.. सरासर डाकेजनी...।

नाथूराम—(लम्बी सांस लेकर) वाहरी क़िस्मत.. कि अभी आये ही थे कि चल दिये... (गिड़गिड़ा कर) दादाजी.. ये.. तो...चले।

दादा—(रोकते हुए) ऐ बाबू साहब कहां चले…किधर ? मैंने कहा सुनते हो।

नौकर—(जाते जाते) चले नहीं बाबू साहब भागे कहिये-भागे जाते हैं—वहां…जहां इस तरह खुले-आम-डाके पड़ने-का-खतरा नहीं रहता। इन्सान को इन्सान समझा जाता है। गरीबों को सताया नहीं जाता। यानी वापस अपने गांव-खेती करने ! (ज़ोर से)

नाथूराम—क्या करोगे खेती करके-उसमें आजकल–कुछ फ़ायदा नहीं।

नौकर—(बाहर से जाते जाते) लूट मची है…डाकू हैं–सब–डाकू। (चीख कर आवाज़) डाकू…अरे मार डाला…इधर भागा है… नहीं इधर वगैरह वगैरह)

माया—(हांफते हुए प्रवेश) मौसा ! बड़ा भारी डाकू था। सफेद कपड़े--सर पर पगड़ी, लम्बे लम्बे हाथ आंखें चमकती हुई… फीलियां कि ये–ये…

नाथूराम—(उत्तेजित स्वर में) तो आप डाकू के पैरों को…क्यों टटोल रहे थे ! गया किधर ?

दादा—(तेज़ी से) अभी पुलिस में ख़बर करता हूं। देखते क्या हो !

माया—(हांफते हुए) अंधेरा था मुठभेड़ हो गई। मैं गिरा वह गिरा। वह उठ कर भागा और मैं…मैं…

काशी—आप 'भागे'…नहीं इधर लपके…हम लोगों की रक्षा के लिये। मगर यह मुंह पर आपने कपड़ा क्यों लपेट रक्खा है ? इससे तो मायाजी ! आप खुद सरासर डाकू लग रहे हैं। उसने आपको…

(नीचे से आवाजें आती है…नौकर की आवाज़ ऊपर है, इसी मकान पर चढ़ा है। बड़ा खूंखार, मुंह कपड़े से ढंके है… सावधान रहना…

नाथूराम—(एकाएक हंस कर) अरे माया...यह तो...नया नौकर...था

माया—(शरमाते हुए) मैं ने.. महज...यूं.. ही हें-हें-रूमाल कान में... बांध लिया था...ज़रा सा...

काशी—उसने आपको 'ज़रा' सा डाकू समझा और क्या बुरा किया। (हंसती है) बेचारे!

माया—(शिकायतन) मौसाजी! देखिये ये सब मुझे...हां...प्रिन्सिपल साहब...[हंसी की लहर, बढ़ती जाती है। सब लोग हंसते है... और हंसते हैं]।

(पटाक्षेप)

—:*:०:*:—

चन्द्रमा की दशा

समय : सुबह के आठ बजे

स्थान : नाथूराम का कमरा

निर्देश :—

दृश्य परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं। रिक्शेवाला बिना रिक्शे के दादाजी के साथ आ सकता है और फिर वापस चला जाय। अंत में फिर उसे एक बार दर्शकों के सामने दुबारा आना होगा, बाकी समय में रिक्शे का भोंपू नेपथ्य में बज़ेगा तो दृश्य स्थापना भली भांति हो जायेगी।

नाथूराम के कमरे की सजावट मामूली हो-यानी एक तख़्त, दो चार मोढ़े कुर्सी एक मेज़, जिस पर कुछ अख़बार किताबें और कुछ फाइलें, हां एक बड़ा सा शीशा भी ज़रूरी है जिसके सामने वह गुनगुनाते हुए खड़े दिखेंगे अलावा एक दूसरे छोटे शीशे के जिसे वह हाथ में लिये हों।

नाथूराम के कमरे तथा दूसरे या बरामदे के बीच एक पर्दा या दरवाज़ा बना लेने से सुविधा क़ाफी हो जायेगी। बांई ओर नाथूराम का पूरा कमरा रहे और दांई ओर कमरा या बरामदे का थोड़ा सा भाग सामने रहे, वहीं पर

पहले दादाजी तथा रिक्शेवाला प्रवेश करें और आगे चल कर वहीं काशी तथा पिरथी झगड़ते हुए दिखाये जांय। नाथूराम के कमरे में अच्छा हो यदि एक खिड़की भी दिखाई जाय, जिसके जंगले ही दिखें और जिससे होकर सूर्य की किरणें (लाइट लगा कर ऐसी व्यवस्था की जाय) आती दिखें।

पात्र :—

नाथूराम

सुनयना

पिरथी

काशीबाई

दादाजी, तथा

रिक्शेवाला।

—:❀:०:❀:—

चन्द्रमा की दशा

xxxxxxxxxx

[नाथूराम शीशे के साने खड़े हुए गुन गुना रहे हैं]

"जिनके कछु और अधार नहीं, तिनके-तुम्ह हीं रखवारे हो—अधार नहीं-तुम्ह हीं" (वगैरा)

[सुनयना अन्दर आते आते]

सुनयना—(दर्शकों की ओर) ले देखे कोई ! सूरज चढ़ आया-छुट्टी का दिन है, तो···क्या सिर्फ इसीलिये कि सारे काम काज छोड़ कर, शीशा हाथ में लेकर, कोई सिनेमा के गाने गुन-गुनये जायें। कोई देखे तो...अरे वाह ! उमर के साथ चाहिये तो येथा...

नाथूराम—(बात बीच में काट कर) शीशे में मुंह देखना भी कोई गुनाह है !! (दर्शकों की ओर) अब भला सिनेमा का गाना कौन गुनगुना रहा था !! मैंने तो यह गीत स्काउटिंग के सिलसिले में कभी स्कूल में सीखा था। (एक लम्बी सांस लेकर) तुमसे तो...सच···मुद्दत हुई है एक प्यार की बात सुने हुए (भावुकता से) क्यों सुनयना···क्या अब दुनियां··· बिल्कुल बदल गई है।

सुनयना—दुनियां का तो पता नहीं (उंगली ठोड़ी पर) शक्ल तो जरूर बदल गई है। (हंसते हुए) आव देखा न ताव सिने-मियां हीरो की तरह 'डायलाग' बोलने लगे। अब शीशा एक तरफ रख भी दो न, मैं कहती हूं क्यों उसके लिये नाहक शर्मा रहे हो।

नाथूराम—(उलझन में हड़बड़ा कर)शर्मा रहे हो—मैंने कहा क्यों गरम-यानी कि क्यों नाराज़...नहीं नहीं मतलब है कि हैरान हो रही हो। (लाचार होकर) एक ज़रा सा अपनी शक्ल ही तो शीशे में देख रहा था। (आवाज़ उठाते हुए) खिड़की पर खड़ा किसी दूसरे की खिड़की की तरफ तो नहीं ताक झांक कर रहा था।

सुनयना—(सर पर साड़ी ठीक करते हुए) वह भी करोगे-कर भी देखो न! क्यों दिल की दिल में रह जाय। हाय राम! मेरी तो अच्छी बात भी सबको बुरी लगती है। अरे कभी तो कोई काम की बात हो...

नाथूराम—(बात बदलते हुए) एक प्याला चाय की कैसी रहेगी?

सुनयना—(दर्शकों की ओर) कोई सुने काम की बात? चाय न हुई राम नाम हो गया। आज बीस साल बीत गये इसकी रटन सुनते हुए॥

नाथूराम—(बीच में) बीस नहीं पूरे तेईस और अब यह चौबीसवां चल रहा है पिरथी की मां!

सुनयना—(आवाज़ में नरमी आ जाती है) देखो तो पलक मारते इतना लम्बा अरसा हो गया.. क्यों?

नाथूराम—(उसी अंदाज़ में) इतनी लम्बी मंज़िल हंसते-खेलेते हंसी-खुशी दुख–सुख में हाथ बंटाते बीत ही गई।

सुनयना—हां कट ही गये-मेरे पल्ले तो सुख कम.. दुख ही ज्यादा पड़ा (एक सांस लेकर) ..अपना अपना भाग्य।

[दूसरे कमरे से काशी बाई तथा पिरथी के स्वर सुनाई देते हैं]

काशी—(चीख कर) नहीं! नहीं!! नहीं!!! मैं हज़ार बार कहूंगी कि तुम्हारे अक्ल है ही नहीं।

पिरथी—नॉनसेन्स, यानी अपने बड़े भाई से इस तरह सरे आम बदतमीज़ी। तू इसे पहन कर बाहर जायगी!!

काशी—क्यों न जाऊं !

पिरथी—तो मुझसे...

काशी—मां ! मां !! ओ मां।

[सुनयना और नाथूराम सुन रहे हैं]

सुनयना—यह रहे अपने लाड़ले.. क्या मजाल कि कभी...कोई बात... काम की और समझदारी की हो। (उलाहने में) ठीक अपने पिताजी के अवतार...

नाथूराम—(बिगड़ते हुए) लड़ने की कला तथा तालीम में तो मां का असर ज्यादा दीखता है। बात कुछ यूं होगी नहीं...पर हवा में गांठें दिये जाते हैं। अच्छा.. टालो भी...अब तो...चाय आने दो।

सुनयना—(हाथ ठोड़ी पर) मैं हवा में गांठें देती हूँ-चाय...चाय... भला कौनसी नियामत है चाय ? कोई फल खाय...मेवा... दूध.. घी...तो समझ में भी आये.. कलेजा-फूंक देती है-फूंक...

नाथूराम—(बीच में बराबर बोलने की कोशिश करता है) मगर सुनो भी तो...अरे भाई ! आजकल की मंहगाई में...मैंने कहा कि सुनो तो...(अंत में झुंझला कर) तो फूंक देने दो न ! कौन कोई जवान कलेजा है कि किसी को अफ़सोस होगा।

सुनयना—(दूनी तेज़ी से) शीशा लिये घंटों...देखते रहे...भला आंखों के नीचे की झुर्रियों की कतारें भी देखीं ! क्या ? और अपना.. यह रंग जो निरा निर.. काला पड़ कर भदरंग हो गया है।

नाथूराम—(अनसुनी करके) यह रंग.. कब सदरंग था.. यह भी तो बताना ज़रा ! ऐसा भी क्या कि मैं सब कुछ भूल ही जाऊं.. रानी !

सुनयना—(बात फिर पलटते हुए) खून रहता है जब बदन में तो रंग कुछ दूसरा ही दीखता है।

नाथूराम—(हंसते हुऐ) तो यह कहो न। अरे भाई ! देसी रंग में खून ज्यादा तो फिर पहले बैंजनी रहा होगा—बैंजनी।

सुनयना—(नाराज़ होती है) यह बातें तुम्हारी मैं खूब समझती हूं।

नाथूराम—क्यों नहीं…क्यों नहीं। तेईस साल कुछ कम होते हैं ! फिर तुम्हारी जैसी तेज़ दिमाग वाली के लिये !! इसी बात पर चाय के साथ पकौड़ी भी हो जाय रानी। क्यों·· ? छुट्टी का दिन है न।

[नीचे से दादाजी की आवाज़ आती है]

सुनयना—अरे देखना तो दादाजी हैं शायद। (ज़ोर से) हां हां अभी आया।

[रिक्शेवाले के साथ आते हैं। कहा सुनी हो रही है]

दादा—और मैं…कहता हूं…कि यहां तुम्हें दस मिनट रुकना होगा।

रिक्शेवाला—एक आना और लूंगा।

दादा—(चश्में से झांकते हुए) यानी सोचा न समझा…ज़बान… तालू से लगा दी ! एक आना…यानी चार पैसे ! अरे मिस्टर ! यह…एक आना . जैसे कुछ हुआ ·· ही नहीं ! भले आदमी चार पैसे में…पूरे हफ्ते भर का खर्च चल जाता था ·· हमारे ज़माने में।

रिक्शेवाला—चलता होगा…पर अब तो कलजुग है सरकार। एक आने में तो एक बीड़ी का बंडल भी नहीं मिलेगा।

दादा—(आंखे तरेर कर) क्या कहा यानी ··तुम ··बीड़ी के .. लिये चार पैसे मांग रहे हो। तब तो नहीं मिलेंगे। मेरा पैसा बीड़ी-सिगरेट-और-शराब में नहीं खर्च हो सकता। क्या समझे।

रिक्शेवाला—(अवज्ञा से) जी-कुछ नहीं। रुकने का एक आना होगा।

दादा—(लौट कर) नहीं मिलेगा। तुम ऐसे के ऐसे ही खड़े रहो जाकर। मैं अभी आया—हां--अभी आया ..। (फिर रुक कर) नम्बर क्या है ?

रिक्शेवाला—नंबर क्या कीजियेगा·· कहीं भागा तो·· जाता···नहीं हूं !

दादा—(डंडा हिलाते हुए) भागोगे कहां मिस्टर ? कैसे हमारे ज़माने में...(बात बदल कर) खैर जाने दो·· ऐसे·· के·· ऐसे·· ही·· खड़े रहना···हां।

[रिक्शेवाला जाता है]

(दादाजी दरवाज़े से अन्दर आते हुए, 'अरे काशी'। पिरथी कहां हो रे—! जवाब मिलता है)

नाथूराम—आज कहां रह गये थे दादाजी ?

दादा—(व्यस्तता से) क्या बतायें—सब्जी खरीदने चला गया था। क्या ज़माना आ गया है···कि चंबल और भाखरा योजना के बाद भी सब्जी कहीं दीखती नहीं। रुपये सेर भिंडी···आठ··· आने···तरोई· सवा·· रुपये·· करेले। दाम सुन सुन कर मेरे कानों में छाले पड़े जाते हैं। अंधेर···है··· अंधेर...

नाथूराम—जौहरी बाज़ार भी देखा होता न !

दादा—ज़ौहरी बाज़ार ! अमां· चांदपोल से···ज़ौहरी बाज़ार···छोटी बड़ी चौपड़·· रामगंज बाज़ार···अजमेरी गेट·· पांचबत्ती·· सब जगह फिर कर आया हूं एक नीबू···(आंखें चढ़ा कर) क्या पूछते हो !! ग्यारह···पैसे...का···है। एक अपना भी वक्त था···कोई चीज़···पैसे की ढाई सेर···से कम मिलती-ही न थी।

[काशी बाई अन्दर आते हुए]

काशी—सॉरी दादाजी...यह तो न बताइयेगा कि...पैसे कै···मिलते थे...आपको अपने समय में ! सवा सौ रुपये पर पेंशन दग गई थी···और उसी जगह पर आज-मोहन साहू को चार··· सौ···रुपये मिलते हैं।

दादा—(झिड़कते हुए) मिलते होंगे...फिर तुझे क्या ?···कितनी बार...कह दिय···कि बीच में...बात न काटा कर...(नाथूराम

से) तो मैं कह रहा था···कि सब्ज़ी···(बीच में) देखना काशी बाई...रिक्शेवाला खड़ा है न !!

काशी—(देख कर) है दादाजी ! दादाजी यह जयपुर परिक्रमा के बाद खरीदा...क्या आपने ? (पोटली सी दीखती है रिक्शे में ।)

दादा—खरीदा क्या...अपना सर ! थोड़ी लाल मिश्री···देसी···कलेजे को ठंडक पहुंचातीहै···एक नीबू और ककड़ी···गट्टे के साग में पड़ जायेगी···और क्या ख़रीदता...(ध्यान बंटता है) ये तेरे हाथ में क्या है !

काशी—ये-स्लैक्स हैं-दादाजी !

[मखमली स्लैक्स दिखाती है]

दादा—(आश्चर्य से) मगर-यह-मखमल की-लाल पतलून-कौन-पहनता है ? (घूम कर चश्में का फोकस मिलाते हुए) यानी कि तुम...नाथूराम···पिरथी ? (बारीकी से देखता है)

नथूराम—(पलट कर) जी-नहीं-तो-दादाजी !

पिरथी—(अन्दर आते हुए घृणा से) नॉट मी सर, दादाजी ।

काशी—अरे कोई मुझसे भी तो पूछे ! यह मेरी सहेली का है-पर-पहनूंगी मैं...

दादा, नाथू—(साथ-साथ) प-ह-नू-गी-मैं !! यानी···तुम···इसे... पहनोगी !!

नाथूराम—पहन कर बाहर जाओगी !!

काशी—(लापरवाही से) घर में पहनने की तो अपनी सलाह है नहीं ।

पिरथी—(सबको मुख़ातिब करते हुए) जी हां अब कहिए । यही मेरा इतनी देर से कहना था...कि जी...न-माने-तो···घर में पहन कर टहल लो । मगर बाहर मत जाओ ! मैं समझता हूं कि 'स्लेक्स' पहन कर यह सिली लगेगी ।

काशी—(बिगड़ कर) यानी इसमें 'सिली लगने की क्या बात है। बिना इसके 'बैडमिंग्टन'...

दादा—(सांस घुटते हुए स्वर में) बैडमिंग्टन यानी एक तो आदमियों की पतलून पहनो-और-फिर धमा चौकड़ी मचाओ ...बस यही और रह गया है...कि सर के बाल भी मेमों की तरह कटा लो।

काशी—(निश्चितता से) वह भी हो जायेगा, पर ऐसा भी मैंने क्या कर डाला...(दादाजी से) कोई डाढ़ी-मूछ-तो लगा नहीं ली... कि आप लोग चौंक चौंक पड़ रहे हैं। (समझाते हुए) फिर यह पतलून नहीं दादाजी 'स्लेक्स' है 'स्लेक्स'।

नाथूराम—नहीं नहीं बेटी ! मैं भी इस काम को करने की सलह नहीं दूंगा। फिर भला इसकी ऐसी ज़रूरत भी क्या है।

पिरथी—इसका कन्टेन्शन है कि ज़माने के साथ हमें आगे बढ़ना है और हमें भी बढ़ना ही होगा।

नाथूराम—(समझाते हुए) तो बढ़ो भाई ! बढ़ो ! पर स्लैक्स पहन कर ही आगे बढ़ना किस डाक्टर ने बताया है ?

दादा—ज़माना-ज़माना-कल के लड़के...(सचेत होकर) ऐ पिरथी ! देखना ज़रा रिक्शा है न ?

पिरथी—(देख कर) है दादाजी !

नाथूराम—(खांसी आती है)

दादा—(चौकन्ने होकर) क्यों ! खांसी आती है !

नाथूराम—(घबड़ा कर) नहीं दादाजी, ऐसे ही कुछ खराश... (रोकता हुआ) आ गई थी...खुश्की से।

सुनयना—(चाय लाते लाते) चाय से खुश्की नहीं तो क्या तरी होगी। पिरथी काशी—मगर भई-क्या गई है खांसी। दादाजी के इलाज से ! एक दम रफूचक्कर...एक-दम-उड़न छू...क्या बात है (हंसते हैं)

दादा—आजकल देसी मिश्री का शर्बत सबेरे पिया करो-नाथूराम ! देखना तो है न रिक्शेवाला !

पिरथी—(देख कर) है दादाजी ।

सुनयना—(घूंघट सरकाते हुए) मेरा काम कर दिया दादाजी ? (पकौड़ी की प्लेट सरकाते हुए) ये पकौड़ी तो लीजिये ।

दादा—(खाते खाते) हां हां बहू-ये रहे 'मूंगे' (खाता है) बढ़िया बनी है और यह रहा 'चन्द्रमा' ।

सुनयना—(प्रसन्न होकर) चलो ! आज दिन भी अच्छा है... (नाथूराम से) सुनो ! जरा इधर तो आना, काशी ले इनके गले में बांध तो !! चटनी लेना दादाजी ।

नाथूराम—(हड़बड़ा कर) यानी मेरे !! क्या कहती हो ! पिरथी की मां !! क्या मैं कोई बच्चा हूं !!

सुनयना—अरे वाह ! क्या नक्षत्र सिर्फ बच्चों के ही ख़राब होते हैं,- भई खूब !! बांधो-बांधो-गले में !

नाथूराम—(रोकता हुआ) मगर सुनो तो···गले में...तो···कमीज़ से साफ़ दिखेगा ।

दादा—(चटनी चाटते हुए) और दिखेगा···तो फिर···(चटकारी लेता हुआ) तो फिर हर्ज़ ही क्या है ? हमने न जाने ऐसे ऐसे कितने 'मूंगे'-'मोती'-पहन फेंके । फायदा इसमें अपना ही तो-है-न···कि देखने वालों का !!

नाथूराम—(आपत्ति करके) मगर दादाजी ! गले में तो पहन कर··· (बात कटती है)

सुनयना—हां-हां...क्या ज़रा सुनूं तो ।

काशी—बेचारे बापू...कोई लोकगीत गाने वाले से लगेंगे···बापू...। भई, मेरी राय नहीं है ।

पिरथी—अपनी भी नहीं । (सलाहन) हाथ में बांध लें तो !

सुनयना, दादा—(तेज़ पड़ते हुए साथ, साथ) क्यों बांधें हाथ में ? गले में ही बांधना होगा ।

सुनयना—हां-और क्या !!

नाथूराम—(कान पर हाथ रखताहुआ)…अच्छा बाबा…अब आज से…आज…चाय छोड़े देता हूं…देशी मिश्री का…शर्बत ही पिया करूंगा।

सुनयना—यह क्या बेकार की बात करते हो बच्चों की तरह। तुम्हारा चन्द्रमा आज कल वक्रहै उसी को संभालने की यह जुगत की गई है। शक्ल पर निरानिर काली छा गई है उसके लिये यह उपाय है।

नाथूराम—(दर्शकों से) चेहरे की कालिमा का नुस्खा कोई सुन ले-सुनयना से तो…इस चांदी के चन्द्रमा की चांदनी से में गोरा भी नहीं होने का। (रिक्शेवाला पुकारता है) अरे आना भई ! दादाजी ! (काशी और पिरथी हंसते हैं)

दादा—(सुन कर जवाब देता है) आताहूं…आता हूं। क्यों गला फाड़ता है रे। पुलिस में दे दूंगा, अच्छा तो अबमें चलूं बहू।

काशी—दो चार पकौड़ी और खाते जाइये दादाजी ! आप तो बस ! (रिक्शे वाला फिर ज़ोर से पुकारता है, और फिर अंदर आता है)।

रिक्शेवाला—दस मिनट ! बाप रे ! बाप !! गये तो गये ही गये। पैसे देने में आना कानी-और घंटों खड़ा कर रखा है। बाबाजी ऐ बाबाजी मैं चला अपनी पोटली संभालिए।

दादा—(नाराज़ होकर) क्या-कहा-बाबाजी…यानी यह बात है। पैसे के पैसे...और (तेज़ी से) हां, हां !! कह-अब-क्या-कहता था !!

रिक्शेवाला—पैसे मेरे हवाले कीजिये और आप मेरी जान छोड़िये। डेढ़ घंटे के बारह आने के हिसाब से पैसे हुए।

दादा—बारह-छः-अठारह–मतलब-'एक रुपये-दो आने-याने'-याने कि-एक रुपैया-और बारह-नये पैसे। काहे बात की हुई यह इतनी बड़ी रकम ! चोर कहीं का !!

नाथूराम—(धीरे से) दे भी दीजिये न दादाजी ! क्यों झगड़ा...

दादा—क्यों दूं ? गाढ़ी कमाई के हैं। पुलिस में दे दूंगा। क्या समझ रक्खा है बदमाश...

रिक्शेबाला—ज़रा ज़बान संभाल के बाबूजी...क्यों ज़बान ख़राब करते हैं।

दादा—क्या कुछ...क्या कहा...।

पिरथी—(बीच में) बुरी बात दादाजी.. इसने बुरी बात नहीं...।

दादा—तुम चुप रहो। मैं इससे निपट लूंगा। पुलिस में दे दूंगा—छः आने की जगह अठारह आने मांगता है--लूटने की फिक्र है...लुटेरा कहीं का।

रिक्शेवाला—बूढ़े आदमी हैं आप क्या बताऊं...।

दादा—(बड़े नाराज़ होकर) क्या कहा...क्या कहा...आगे बढ़ता है।

नाथूराम—दादाजी ! दादाजी ! (रोकता हुआ) पिरथी तू लाकर पैसे दे देना...नहीं तो दादाजी हाथ छोड़ बैठेंगे।

दादा—(नाथूराम से) बड़े पैसे वाले बने हो। हमने अपने समय में न जाने कितनों के दिमाग ठंडे कर दिये हैं। क्या बताऊं, इस समय मेरा डंडा नहीं है; नहीं तो सर फोड़ देता।

रिक्शेवाला—डंडा घर पर होगा ही, जाइये न, वहीं फोड़ लीजियेगा...खैर मैं अपना वाला सर लिये ही जा रहा हूं (हंसता है) यह रही आपकी पोटली (फेंक कर जाता है)

दादा—(पुकार कर) कहां जाता है ? कहां जाता है ?

रिक्शेवाला—(जाते जाते) वकालत पढ़ने जिसमें आप जैसे लोगों से जिरह तो कर सकूं।

दादा—वापस आओ ! वापस आओ !! पुलिस में दे दूंगा। क्या ज़माना आ गया है !!

पिरथी—मान गये दादाजी ! क्या खूब भगाया है उसको पैसे बचा ही लिये न। अब न शिकायत कीजियेगा कि चीजें मंहगी है। (हंसता है)

काशी—(पुकारती है) दादाजी, दादाजी ! मां कहती हैं कि दो चार पकौड़ी और खाते जायें, गरम गरम निकल रही हैं।

नाथूराम, पिरथी—हां दादाजी चलिये न। ऐसी भी क्या जल्दी है आज छुट्टी का दिन है।

नाथूराम—दादाजी की पोटली लेते आना रे, हां।

दादा—हां ! तो मैं कहता हूं कि आजकल के रिक्शेवालों के दिमाग भी बहुत बढ़ चढ़ गये हैं। और यह सब कसूर है (ज़ोर से) कसूर है...नाथूराम तुमने अभी मूंगा और चन्द्रमा नहीं पहना ? बहू !

नाथूराम—दादाजी ! मैं...कहता हूं...क्या...कि...

सुनयना—अभी लाई दादाजी (लिये हुए अन्दर आती है)

दादा—पहना दो...अभी।

[नाथूराम की ओर तावीज़ लिये आगे बढ़ती है, नाथूराम दोनों हाथों से गला पकड़े हुए पीछे हटते हैं, और पीछे हटते हैं।]

पटाक्षेप

फ़िज़ूल ख़र्ची

—:*:o:*:—

समय : सुबह आठ नौ बजे

स्थान : नाथूराम के बरामदे का एक भाग

निर्देश :—

दृश्य इस प्रकार है कि सब लोग बरामदे में ही हैं— यानी नाथूराम ज़रा बांई ओर हट कर बीच में तख़्त पर अखबार लिये हुए और सुनयना उनके पास ही बैठी हैं। बाकी लोग आकर उचित स्थानों पर बैठेंगे या खड़े रहेंगे। स्टेज़ के फिर दो भाग कर लेना ही उचित होगा यानी–दांई ओर दरवाज़ा हो जिसके दूसरी ओर चंदे मांगने वाले आदि से जाकर नाथूराम की भेंट होती है। बरामदे की सजावट के लिये विशेष प्रयत्नशील होने की आवश्यकता नहीं– साधनों के अनुसार एक मध्यवर्गीय परिवार के अनुरूप ही बनाया तथा संजोया जा सकता है। बस, एक बात का ध्यान रहे कि 'घर का' वातावरण स्थापित किया जा सके यही लक्ष्य है।

पात्र :—

नाथूराम

सुनयना

काशीबाई

दादाजी

पिरथी

माया

स्त्री तथा

पुरुष (चन्दा मांगने वाले)

—❋o❋—

फ़िज़ूल ख़र्ची

—:०:॥:०:॥:०:—

[सुनयना और नाथूराम बैठे हुये बातें कर रहे हैं। बजट पेश है। तनातनी का वातावरण है। आवाज़ें ऊपर उठती है]

नाथूराम—(एक हाथ सर के ऊपर उठाते हुये) सुन लिया–सुन लिया—दशहरा है–विजया दशमी है, बरस बरस का त्योहार है...(आंख में आंख डाल कर) मगर हफ्ते भर पहले से सेर भर दूध ज्यादा···पांच सेर मिठाई और सवा सेर नमकीन–बिस्कुटों के अलावा···जो···तो···ख़ैर हैं-हीं; यानी अब आख़िरी बार यह त्योहार आकर क्या अब...आगे ना आयेगा ? ज़रा तो समझ से, काम की···बात करो।

सुनयना—(उसी ताव से) कोई समझदार हो तो समझ की बात समझे भी। श्रीमान्, इतने से क्या होगा ? अगर आपके दोस्तों का तांता ऐसा ही रहा···तो फिर मुझ से सुनिये पान दो ढ़ोली।

नाथूराम—(चिहुंक कर) और ?

सुनयना—और नहीं तो क्या ? सिगरेट के दो टीन,–छाली-सवा सेर- गरी···

नाथूराम (झल्ला कर) दस सेर-नमक मिर्च-बहत्तर सेर (सर पर हाथ रख कर) अरे यह सब कैसे चलेगा···तनख्वाह का अभी भी वही हाल है–कि महीने की आख़िरी अनन्त का छोर हो जाती है। (दर्शकों की ओर) दशहरा न हुआ···

लगता है राम और रावण की फौजों के एटहोम का ज़िम्मा अपने ही हिस्से में आया है। मैं बाज़ आया।

सुनयना—(घूंघट खिसका कर पैंतरे से) बाज़ आया-कौन…तुम !! क्यों चिल्ली पुकार मचा रहे हो ! कोई सुनेगा तो…

नाथूराम—(बात काटता हुआ) कहेगा मति मारी गई है ! हां-हां इसी की कमी थी-शुरू होने दो अपना-चिरन्तन-ग्रामोफोन-रिकार्ड (आगे बढ़ता हुआ) मगर रानी ! मति-मेरी नहीं-मारी गई है !!

सुनयना—(नाराज़ी से) तो मतलब यह है कि…

नाथूनाम—(यकायक ज़ोर से) पिरथी—मैंने कहा।

पिरथी—(दूर से) हां बापू ! अभी लाया।

नाथूराम—(वैसे ही) क्या अभी लाया ?

पिरथी—(वहीं से) दशहरे के खर्च का तख़मीना !

नाथूराम—(ताव में) ख़र्च–वर्च का तख़मीना मैं नहीं पूछता हूं, अख़बार आया क्या ?

पिरथी—(वहीं से) नहीं आया बापू।

सुनयना—(बड़बड़ाते हुए) आग लगे–अच्छा है नहीं आया-नहीं तो उसी में....

नाथूराम—(बात काट कर) रुको मत…दशहरा है न ! कहो न ! कि मुंह छिपा कर एक जगह बैठजाता। (आगे बढ़ते हुए) तो सुन लो...मेरा बस चले…तो उसका कुछ हिस्सा मैं कान में भी लगा सकूं। (बड़बड़ाता है) बेकार की बातें…

सुनयना—(ऊपर की सांस ऊपर) ले सुन ले कोई ! यानी मेरी बात से चिढ़ हो गई है। (दर्शकों की ओर) बरस बरस का त्योहार…और बात बात में लगे-सूम की तरह-हाय-तोबा मचाने।

नाथूराम—सूम की तरह...यानी मैं सूम हूं ! (ज़ोर से) मैंने...कहा... पिरथी ! आया अख़बार ?

सुनयना—(बड़बड़ाते हुये) अख़बार; अख़बार-अख़बार न हुआ राम नाम हो गया। क्यों निकालते हैं…लोग ये मुये अख़बार!

नाथूराम—(बनावटी प्यार से) महज़ इसलिये कि भले लोगों को घर की फ़िज़ूल फ़रमाइशों से दूर रहने का मौका मिल सके। (हंसता है) सुनयना रानी दशहरा दिवाली पर तो यह मर्ज़ और भी बड़ा होता है इसलिये विशेषांक होते हैं (हाथ से बताते हुए) ये डबल डबल। (आवाज़ बदल कर) रुपये पचास से एक कौड़ी ऊपर ख़र्च मुझ से न होगा।

सुनयना—(हाथ झटक कर) ख़र्च हो या न हो, पर इस तरह गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने से शब्द शक्ति कुछ बढ़ जायेगी क्या? घर वालों की एक तरफ़, ज़रा मेहमानोंकी तो सोचिये। भाभी, पूजा पर बैठी हैं उनका लड़का माया आया है.. ये सुनेंगे तो क्या कहेंगे।

नाथूराम—(धीरे धीरे) ऐसा करो मेरे मुंह पर ताला लाकर फिटकर दो। (ज़ोर से) काशी, आज चाय मिलेगी या नहीं।

काशी—(दूर से) चाय तो बन गई पर दूध वाली नहीं आई है बापू।

नाथूराम—(इधर उधर टहलता हुआ) सब दशहरे का ऊधम है। (बड़बड़ाता रहता है)

[माया आता है]

माया—हें-हें-हें-मौसाजी, ऐसा 'आइडिया' है…कि आप…हें-हें-हें।

नाथूराम—मायाजी, कैसा 'आइडिया'?

सुनयना—(माया की तरफ) हड्डी हड्डी दीखने लगी अपने माया की (नाथूराम से) क्यों है न?

नाथूराम—(खांसता हुआ) हां-हां वैसे तो ठीक ही है।

माया—(अपनी धुन में) हें-हें-हें- मौसीजी घमासान दौड़ें हो रही थीं और अपना कालेज हारता चला जा रहा था। तमाम टीचरों ने, लड़कों ने आकर घेर लिया…घेर। और बोले-

"माया अब इज़्ज़त गई। अपनी चोट भूल जाओ" मैंने पैर झिटकार कर पूछा "कुछ कहो भी तो ?"

बोले-"क्या कहें...अब तुम माइल रेस में न दौड़े तो हम सब गये" (ताव में अकड़ते हुए) मैंने फिर पैर झटकारा।

सुनयना—दुबारा ! फिर क्या हुआ ?

माया—(एक्शन के साथ) एक हाथ से कोट उतारा और दूसरे से नस दबाई।

पिरथी—(अन्दर आते हुए) फिर वही 'माइल रेस' अध्याय हो रहा है मेरे यार।

नाथूराम—बीच में टोको मत पिरथी...बुरी आदत है (माया से) माया फिर !

माया—(एक्शन) और...एक छलांग में मैं ट्रैक पर पहुंचा—पिस्तौल दगी, और मैं उछल कर (तेज़ी से) ये गया, वो गया, वो गया, वो गया। अपने को तो होश तब आया...

पिरथी—(धीरे से) जब आंख खुली।

सुनयना—चुप भी रहो पिरथी। फिर क्या हुआ माया ?

माया—(सांस भरते हुए...जैसे अभी अभी दौड़े हों) प्रिन्सिपिल साहब मुंह पर पानी डाल रहे थे। लड़के नारे पर नारे लगा रहे थे, मैंने कमज़ोर आवाज़ में पूछा—टाइम कितना लगा—किसीने कहा तीन मिनिट और अस्सी सेकेण्ड-मैं उसके बाद बेहोश हो गया।

पिरथी—(ज़बान चट पट करते हुए) माया जी-घड़ी रुक गई होगी यकीनन। अरे यार दुनियां का रिकार्ड तोड़ दिया तुमने। 'लैंडी' को भी ले डूबे क्यों ? नहीं...(हंसता है)

माया—(अपने में रमा हुआ नाथूराम से) मतलब यह कि इतनी बड़ी मेहनत के बाद हें-हें-हें-ज़रा दुबला हूं...तो क्या हुआ मौसाजी।

नाथूराम—(खोया सा) जी, बेटा जी, वाह कमाल कर दिया।

माया—(हथेलियां मलते हुए) हें-हें-हें···काशी से कह रहा था त्यौहार है घर नई तरह से सजा दूं, हद पचास का खर्च है, क्यों मौसाजी ?

नाथूराम—(कमज़ोर आवाज मे) बेटा काशी, एक गिलास पानी मिलेगा। पानी।

सुनयना—(बीच में आती हुई) ऐसा है बेटा माया कि तुम क्यों नाहक परेशान होगे।

माया—(हंसता हुआ) अरे मैं ? फिटिंग तो यूं होगी—यूं (चुटकी बजाता है) कालेज में लोग बोले, अब तो माया बस तुम्हीं हो...मैं हंसा-वो बोले 'फिटिंग'।

पिरथी—(दांत पीस कर) काम की बात ! माया ! काम की बात।

माया—(अपनी धुन में) कमरों में (हंसी) यूं दरवाजों पर पन्नियां चमाचम, उनके चारों ओर सतरंगे फूल-बाहर की खिड़कियों और मेहराबों पर तीन रंग के बल्ब (हाथ के इशारे से बताता हुआ) लाल–हरे, पीले लाल, हरे पीले।

काशी—(अन्दर आते हुये) मानोगे नहीं माया···मैं कहती हूं कि पीला रंग रत्ती भर नहीं जंचेगा। मेरी बात मानो, जंचेगा (बताती है) हरा; नीला ऊदा, हरा नीला ऊदा।

पिरथी—(बीच में) थर्ड क्लास। कोई 'टेस्ट' नहीं है तुम लोगों का। होना यूं चाहिये (हाथ के इशारे से बताते हुए) दो लाइने लाल, लाल-लाल; हरा-हरा-हरा और फिर चलो नीला-नीला–नीला !!

माया—(हंसता है) जनाब कितनी सजावटें करके एक तरफ़ कर दी हैं और अब (बनते हुए) मुझी को सिखाया जा रहा है।

नाथूराम—(बिगड़ते हुए) मैंने कहा सुनयना, चाय क्या आज मिलेगी ही नहीं।

माया—(अचानक) मौसाजी, मैंने कहा, फौव्वारा लगा दूं ?

नाथूराम—(चौंक कर) फौव्वारा ! कहां ? (नाराज़ होकर) मेरे सर पर !

माया—(हथेलियां रगड़ते हुए) हें-हें-हें नहीं मौसाजी, ख़ास आपके कमरे में (सुनयना की ओर देख कर) मौसीजी के कमरे में। रुपये तीस, तीस लगेंगे। पानी यूं निकलेगा (हाथ के इशारे से) फर्र-फर्र-फर्र।

काशी—(हंसती हुई) बीरन! मेरे कमरे···में तो नहीं !! पानी यूं ही खूब बरस रहा है और उसपर अगर आपने फौव्वारा फिट कर दिया तो सबको एक तरफ से गठिया धर दबायेगा। क्यों बापू ?

नाथूराम—(खोया खोया) क्या कहा काशी, चाय (बड़बड़ाता है) मेहमान है क्या कहेंगे, (नाराज़ी से) पिरथी अख़बार आया!

पिरथी—नहीं—बापू नहीं आया।

काशी—दूधवाली जाने कहां मर गई।

नाथूराम—(तैश में) तो क्या आज नल में पानी भी नहीं आया।

माया—(अपनी धुन में) मौसाजी फौव्वारों से पानी ऐसा निकलेगा, ऐसा कि (हाथ के इशारे से) फर्र-फर्र-फर्र। मौसीजी···

सुनयना—(ऊब कर) हां बड़ी अच्छी बात सुझाई तुमने बेटा, माया।

माया—(एकाएक) कहो तो पानी पर लाइट का खेल करवा दूं (झूम कर) मज़ा आ जायेगा (हाथ के इशारे हो रहे हैं) यूं लाल-पीला-नीला; लाल पीला नीला; फर्र-फर्र-फर्र (वगैरह)।

काशी—(बीच में) नहीं माया मिस्टर, मैंने पचास बार कह दिया पीला नहीं चलेगा–नहीं चलेगा–बिल्कुल नहीं चलेगा, लाल-हरा-ऊदा ठीक रहेगा।

पिरथी—(हंसता है) मगर यह तो मेरे यार··· फिर तुम माइल···रेस लग गये तीन मिनिट अस्सी सेकेण्ड में।

माया—(रूठ कर) यानी क्या ? पिरथी, मौसाजी, काशी (सब की ओर बारी बारी से देख कर) इस पर तुम शक करते हो ?

पिरथी—(बनावटी तारीफ़ करते हुए) राम भजो, शक और तुम पर (हंसता है) मैं तो सिर्फ अर्ज़ करना चाहता हूं—कि त्योहार

है दशहरे का, और तैयारी आप…(और हंसता है) दीवाली की फ़रमा रहे हैं…फौव्वारों पर (हाथ के इशारों से) लाल-पीला नीला और क्या कहते हैं कि सर्च लाइटें इधर से उधर--(खूब हंसता है)

नाथूराम—(सांस में सांस आती है) वही तो मैं कहता हूं। यानी कि माया, यह तो दशहरा है न बेटा ! पिरथी, तुम अपनी साइकिल पर इनको म्यूज़ियम लेते जाओ आज कल धूम मची है।

पिरथी—म्यूज़ियम में तो ले ही जाना है इन्हें, पर अपनी साइकिल पर नहीं। बापू ! क्या कहेगी वह बेजुबान ? (तत्परता से) मील भर ही तो होगा इनको स्टार्ट करा कर मैं बाद में पहुंच लूंगा ये तो तीन मिनिट और…

माया—(अपनी धुन में) दशहरा है, तो मैं एक ऐसी प्रतिमा बनाऊंगा कि लोग दांतों तले उंगली दबायेंगे। (एक्शन के साथ) यूं…मां…दुर्गा, त्रिशूल लिये सिंहवाहिनी, बकासुर पैरों के नीचे दम तोड़ता हुआ पड़ा है। हां पिरथी ! सिंह के एक एक दांत गिनवा दूंगा और अयाल में के एक एक बाल !

पिरथी—(चिढ़ाता है) और दुम के नहीं।

माया—(सुनी अनसुनी कर के नाथूराम से) और खर्च कुछ नहीं महज सौ रुपये का। मौसाजी, देखना शहर का शहर उमड़ पड़ेगा, भीड़ें लग जायेंगी, पुलिस का इन्तज़ाम करना पड़ेगा। (सुनयना की ओर) उस बार प्रिन्सिपल साहब ने कहा 'माया' अब क्या होगा ? मैंने कहा (बात पलटते हुए) ख़ैर जाने दीजिये दशहरा है तो कहां जायेगा उससे भी हम निबट लेंगे।

काशी और पिरथी—(साथ साथ) जय बोलो मां दुर्गा की।

पिरथी—(शरारत से) मगर यार माया ! यह कलाकृति आपने

तैयार कर दी तो नाहक लोग म्यूज़ियम-की ओर नहीं इधर खिंचे चले आयेंगे। पुलिस को इन्तज़ामके लिये इधर बुलाना पड़ेगा तो फिर उधर का क्या होगा ? अमा टालो भी।

नाथूराम—(बेहद उकता कर) मैंने कहा पिरथी की मां, यह सब क्या हो रहा है।

सुनयना—(धीरे धीरे) बच्चे हैं, मन तो रखना ही पड़ेगा, कौन दशहरा रोज़ रोज़ आता है।

नाथूराम—(ज़ोर से) पिरथी जा जाकर देख तो कि अख़बार आया भी या नहीं।

[दरवाज़ा खटकता है। नाथूराम आया भाई आया—भाई कहते हुए दरवाज़े की ओर जाते हैं। जाते हुए सबको अन्दर आने के लिए कहते हैं)

[दो स्त्रियां तथा एक पुरुष]

नाथूराम—(हाथ जोड़ कर) कहिये आज्ञा कीजिये (सशंक से) मैंने आपको पहिचाना नहीं-आज्ञा कीजिये।

पुरुष—मैं हूं विनोद चन्द्र आप ही हें-हें-हें-हें—लाला नाथूराम जी हैं ? (चश्मा निकाल कर और फिर वापस चढ़ा कर) आ-हां।

नाथूराम—(कुछ सोचता हुआ) मैं–मैं यानी कि (चश्मा ठीक करता है) मगर मैंने आपको पहिचाना नहीं।

स्त्री—(धीरे से अलग) जी, आपही तो होंगे देखिये न, सर पर बाल नहीं, चश्मा आंखों पर (ज़ोर से) आपही तो हैं 'नाथूराम जी सेठ'।

नाथूराम—जी मैं ही नाथू-नाथूराम ! मगर मैंने आपको पहिचाना नहीं। (शंकित होकर) वैसे काम क्या है ?

स्त्री—लालाजी (ज़रा हंस कर) काम का भी पता चला जाता है, आप परेशान न हों। हम लोग तो समाज़ सेवक मात्र हैं। क्यों विनोद भाई ?

पुरुष—और क्या लीला बहन।

नाथूराम—मगर मैंने कहा कि आप लोगों ने कैसे कृपा की ?

पुरुष—(शरारत भरी) आं हां। तो लाला नाथूराम जी हम लोगों ने आपका बड़ा नाम सुना है। क्यों लीला बहिन।

स्त्री—(लापरवाही से) और क्या विनोद भई।

पुरुष—(रसीदी किताब निकाल कर) हम लोग नगर दशहरा कमेटी के मेम्बर हैं। तो लीला बहन, कितने की रसीद काट दी जाय ?

स्त्री—यही पन्द्रह रुपये की।

पुरुष—(लिखते हुए रुक कर) नहीं जी, लोग क्या कहेंगे ? आप बड़े आदमी हैं (लिखते हुए नाथूराम की ओर देखता हुआ) बीस-नहीं पच्चीस ?

नाथूराम—(घबड़ा कर) जी नहीं आठ...

स्त्री—(बात काट कर) आठ, अरे वाह ! याने (दर्शकों की ओर) आठ रुपये का क्या तुक है। क्यों विनोद भाई।

पुरुष—और क्या लीला बहिन ! (नाथूराम से) अच्छा चलो पन्द्रह पर मामला ख़त्म करो।

नाथूराम—(तेज़ी से) ईश्वर के लिये बात मेरी भी सुन लें आप। मैं आठ 'आने' दूंगा बस।

पुरुष—(सर पर हाथ मार कर) आठ···आने - सर्वनाश, यह आप क्या कह रहे हैं ?

स्त्री—(आंखें बन्द करके फिर खोलती हुई) यह मेरे कानों में आनों की बात क्यों और कैसे सुनाई दी...विनोद भाई ?

पुरुष—आं-हां, लीला बहिन, मगर यह तो बात ठीक नहीं; यानी नाथूराम जी सेठ और बातें कहें 'आनों' की तो अब क्या होगा (आंखें ऊपरकी ओर) और (दर्शकों की ओर) हे ईश्वर-हे सिंह - वाहिनी, दुःख-हारिणी-पतित-पावनी।

स्त्री—(सोचते हुए तनिक घृणा से) मैं तो कहती हूं कि लोग आख़िर क्या कहेंगे विनोद भाई !!

पुरुष—कहेंगे क्या ? सर पीट लेंगे सर, और क्या कहेंगे लीला बहिन। अब बड़े लोग जब इस पर आगये तो आखिर होगा क्या। न राम का श्रृंगार हो पायेगा और न अच्छी आतिश-बाज़ी का बन्दोवस्त।

स्त्री—(और भी घृणा से) हा-राम सीता ! यह बहुत ही लज्जाजनक बात है (नाथूराम को उकसाती हुई) आपकी आखिर समाज की ओर भी कुछ ज़िम्मेदारी है।

पुरुष—(समझाते हुए) यह तो दुनियां है लाला नाथूराम जी, और फिर दशहरा है, कुछ रोज़ रोज़ तो हम आपके द्वार पर आने के नहीं। क्यों लीला बहिन !

स्त्री—और क्या विनोद भाई (नाथूराम से) अब सोचने का वक्त नहीं (विनोद से) काटिये रसीद।

पुरुष—(नाथूराम जी बीचमें बोलना चाहते हैं उनको डांट कर रोकते हुए) अभी भी आप कुछ कहना चाहते हैं, सोच विचार ही कर रहे हैं।

स्त्री—(नाथूराम की तरफ से) कौन कहना चाहता है ? कौन सोच रहा है ? (विनोद से) काटिये रसीद।

नाथूराम—(क़रीब क़रीब हकलाते से) मगर महोदय, महोदया, मैं इतना बड़ा···और ज्यादा चन्दा हरगिज़ नहीं दे सकता।

स्त्री—(आंखें बन्द करके फिर खोलती हुई) यह मैं क्या सुन रही हूं असम्भव है; नामुमकिन ! विनोद भाई।

पुरुष—और क्या लीला बहिन (रसीद फाड़ता है) काट दी रसीद चन्दे की (इधर उधर देखते हुए) ये घर आपका अपना ही है क्या ?

नाथूराम—(नाराज़ी में खीझ कर) तो क्या यह घर ही आप चन्दे में लिखे ले रहे हैं (बिगड़ कर) मैं बाज़ आया।

स्त्री—अधीर न हों, केवल दस रुपये की बात है।

पुरुष—(तत्परता से) और एक रुपया परसाद फण्ड का भी तो होगा।

नाथूराम—(दर्शकों की ओर) फण्ड वण्ड तो क्या ? यह सब मुझे दण्ड ही मालूम हो रहा है (आवेश में) यह क्या कोई ज़बर-दस्ती है ?

स्त्री—(उलाहने से) हंसी खुशी मन से कहो लालाजी, नहीं तो दान का सारा असर चला जाता है। (दूसरी ओर) क्यों विनोद भाई ?

पुरुष—और क्या लीला बाहन ! (नाथूराम से) यह रही रसीद और रुपये आप फौरन निकाल दें, हमें तमाम जगह जाना है।

नाथूराम—(हकलाते हुए) अगर मैं इतने रुपये ज़बरदस्ती न दूं तो...

[नोट निकालते हुए]

स्त्री, पुरुष साथ साथ—(चिहुंक कर) न दूं तो ! आप यह क्या कह रहे हैं !

स्त्री—(आंख बन्द करके खोलते हुए) यह क्या होने जा रहा है ?

पुरुष—(झट पट नोट लेता है) लाइये इधर (नोट गिनता है) धन्यवाद।

[चलने की तैयारी]

स्त्री—(जाते हुए) फिर मिलेंगे 'एण्ड' दशहरे आपकी जिन्दगी में साल बाद नहीं रोज़ रोज़ आवें।

नाथूराम—(अवाक्-हतप्रभ) ग्यारह रुपये गांठसे यूं निकाल ले गये !! निकल गई रकम और हम देखा किये···महज़ इसलिए कि लोग क्या कहेंगे···

दादा—(आते हुए कुछ गुनगुनाते हुये) अरे वाह नाथूराम, आज तो तुम सुबह ही सुबह खूब मिले। लगता है टहलना शुरू कर दिया है। अब तुम्हारा पेट निकलना···बिल्कुल दुरुस्त

हुआ समझे सुबह का घूमना वाह (मज़ा लेते हुए चश्मा ठीक करते हुए) चेहरा तुम्हारा चमक रहा है।

नाथूराम—(हाथ से चेहरे पर आड़ करते हुए) चेहरा चमक नहीं रहा है—भदरंग हो गया है दादाजी। कौन गया घूमने, और किसका सुबह का जागना। यहां तो रात भर नींद ही नहीं आती या यूं कहये कि सोने दिया ही नहीं जाता (दुःखी आवाज़ में) सुबह घूमने नहीं सरे आम लुटने आया था।

दादा—(पास आकर कंधे पर हाथ रखता हुआ) क्या हुआ नाथूराम ? (ऊपर से नीचे देखते हुए) जरूर कोई खराबी आ गई है। उसका कुछ उपाय करना ही होगा।

नाथूराम—(सर हिला कर) क़िस्मत को क्या कीजियेगा आप ? कुछ न हो सकेगा !

काशी—(भीतर से काशी बाई पुकारती है) बापू चाय बन गई है।

पिरथी—(भीतर से ही) अख़बार आ गया बापू। अभी आया है।

दादा—(भीतर की तरफ) तो लेते आओ न (नाथूराम से) नहीं-इलाज कैसे नहीं !! ज़रूर है-और ज़रूर है।
(आगे आगे सुनयना नाश्ते की थाली संभाले हुए, पिरथी अख़बार लिए हुए ठीक उसके पीछे काशी चाय तथा माया हाथ में पंखा लिये हुए आते हैं)

नाथूराम—(झुंझलाहट में) सब झगड़े फिसाद की जड़ है यह आपका दशहरा लीजिये—कीजिये—उसका इलाज।

दादा—(हंसते हुए नाश्ते की ओर देखते हुए) दशहरे के दिन खूब होते हैं नाथूराम ! इसीलिए साल में महज़ एक बार ही यह नसीब हो पता है (सुनयना से) यह क्या मिश्री-मावा-है बहू···ख़ूब, भई ख़ूब।

पिरथी—दादाजी आ गये हैं नाश्ता हाज़िर किया जाय न। काशी क्या खड़ी मुंह ताक रही है ? चलती फिरती नज़र आओ।

काशी—अच्छा-अच्छा। सब हो जायगा ज़रा धैर्य से काम लीजिये। पहले माया से तय तो हो जाय कि मां दुर्गाके ऊपर कौन सी लाइट और बकासुर के ऊपर कौनसी ज्यादा ठीक होगी यानी जंचेगी।

नाथूराम—(नाराज़ होकर) मेरा सर न खाओ, तुम लोग नहीं तो मैं कहता हूं मुझसे बुरा कोई न होगा।

सुनयना—(घूंघट से देखती हुई चाय बनाते हुए) तो उसमें ऐसी क्या बात हो गई कि आप रहे, रहे फूट पड़े।

नाथूराम—(अख़बार खोलते हुए अचकचा कर) पानी बरस रहा है पिछले रिकार्ड टूट गये।

सुनयना—(चाय बनाकर प्याला बढ़ाते हुए) पानी तो…ख़ैर बरस ही रहा है ! अगर यही जानने के लिये अख़बार पढ़ने की जरूरत हो तो बस फिज़ूल पैसों की ख़राबी और सर दर्द।

दादा—(कुछ खाते हुए) आज हो न हो…(रुक कर) ज़रूर कुछ बात है। क्यों बहू क्या हुआ। नाथूराम-(अचानक एक टुकड़ा नीचे गिरता है) बुरी बात है बुरी।

सुनयना—(शिकायतन) इन्हीं से पूछिये दादाजी ज़रा ज़रा सी बात पर बस बमक पड़ते हैं। कोई बात भी हो...कुछ समझ में ही नहीं आता है।

नाथूराम—(अख़बार को एक ओर करके झांकते हुए) बात ही समझ में नहीं आती या कि एक एक बात को समझा कर, बस सर पकड़ कर बैठ जाना पड़ता है। (सर अख़बार के पीछे फिर से चला जाता है)।

माया—(जोर से हंसता है सब चौंक उठते हैं)।

माया—(हाथ के इशारे समझाता हुआ) फौव्वारा लगा दूं-मौसाजी ! ऐसा पानी निकलेगा फर्र-फर्र-फर्र और फिर जब उस पर बिजली सज कर खेलेगी तो…फिर देखना घर बोलने लगेगा। तीस में तो नहीं पर पैंतीस में एक फौव्वारा ज़रूर फिट हो जायेगा।

काशी—(लाड़ से पास जाते हुए) बापू ! अबकी साड़ी वाड़ी की चर्चा अब तक कुछ न हुई क्यों ?

पिरथी—(झिड़कते हुए) तो यूं मन छोटा क्यों हुआ जा रहा है। मैंने भी तो अभी अपने सूट का ज़िक्र नहीं किया। इसका मतलब यह तो नहीं कि कुछ होयेगा ही नहीं (शक की निगाह से) क्यों बापू ?

नाथूराम—(अख़बार पढ़ते हुए) बिजली के तारों में उलझ कर एक लड़के की जान गई। (अख़बार में से माया की ओर देखते हुये) माया, यह बिजली का काम ठीक नहीं। ना भाई जना जोखिम है-जान जोखिम।

माया—(लापरवाही से) जोखिम मेरे लिये (हंसता है एक्शन से) एक बार कालेज में घमासान पानी बरसा और बिजली गई… ऐसी गई कि कुछ न पूछो। मगर फिर प्रिन्सिपिल साहब ने कहा माया क्या देखते हो। सर झुकाया कोट उतारा और झट…

पिरथी—(जल्दी से) दुम झाड़ कर भाग खड़ा हुआ।

काशी—(वैसेही) च-च-च-भागा नहीं, बिजलीके खम्भे पर चढ़ गया।

माया—(बिगड़ के) देखो मौसी, ये लोग मुझे छेड़ते हैं।

[हंसी की लहर]

दादा—(कुछ खाते हुए) जब हम तुम लोगों की उमर के थे तो न बिजली–न–बिजली। मिट्टी पीतल के जगमगाते हुये दीपक

चमचमाते थे। हमारा भी ज़माना था जो कि अब कहानी रह गया है (खाने में संलग्न)

नाथूराम—(अख़बार के पीछे से) सुरक्षा परिषद् की गुप्त बैठक शुरू हो गई।

माया—(पास जाकर अख़बार में झांकते हुये) मौसाजी--तो फौव्वारा लगा दूं ?

सुनयना—(ज़रा नाराज़ होकर) अभी तो तुम लोग कहीं घूम आओ कुछ देर को।

पिरथी—(पैन्ट ठीक करेत हुए) फिट हो जाओ सब कोई चलो म्यूज़ियम भेज आऊं।

काशी—मैं···भी···मां !

पिरथी—हां-हां-ज़रूर तुम न जाओगी तो कोई इलमारी खाली न रह जायेगी।

सुनयना—जाओ भाई जाओ दादाजी जा रहे हैं तो सब ठीक है। (सब जाते हैं कुछ देर सन्नाटा रहता है नाथूराम अख़बार के पीछे सर छुपाये हैं)

सुनयना—मैंने कहा, ज़रा यह तो बताना कि इस तरह बात बात पर आज बिगड़ क्यों रहे हो ? यह नया नाटक आख़िर है क्या ?

नाथूराम—(अख़बार के पीछे से) काली मिर्च पुरानी व नई दुनियां के बीच सम्पर्क की कड़ी है। सुना रानी–इसको कहते हैं चटपटी ख़बर।

सुनयना—(अख़बार छीन कर अलग करते हुये) मेरी बात का जवाब दिया जाय। क्या मैं पागल हूं।

नाथूराम—तुम ? (उसकी ओर चश्मे से घूर कर) राम भजो, वो तो मैं हूं-मैं···(हंसता है)

सुनयना—(हाथ उठा कर आंखे इधर करती हुई) छोटे मोटे खर्चों

पर आप तो ऐसी परेशानी और ऊधम उठारहे हैं जैसे कि डाका पड़ा हो।

नाथूराम—(सुनते हुये) सच सच कहूं ?

सुनयना—नहीं झूठ, भला सच भी कहीं कहना चाहिये (रुक कर) तुमको।

नाथूराम—तो ज़रा इधर आना (बक्स खोल कर एक डिबिया निकालता है) ज़रा देखना यह क्या है।(लाकेट निकालता है)

सुनयना—(चौंक कर हाथ में उठाते हुए) ये-ये-ये सोने का लाकेट मय जंजीर के (नाथूराम से) यह किसने कहा था खरीदने को। किसके लिए ?

नाथूराम—(शरमाते हुये) सुनयना रानी ! मैंने कहा कि दशहरा है... न...पर ज्यादा खर्च हो गया तो...यह तो फिर करना ही था।

[अखबार की ओर झपटता है। सुनयना पहले ही झपट कर उसको एक ओर अलग करती है]

सुनयना—(पास जाकर) तो यह फिज़ूल खर्ची कौन कर रहा है (देखती है) कौन पहनेगा इसे ? इस उमर में (नाथूराम से) इसके लिए बी० ए० पास वाली चाहिए।

नाथूराम—(पहनाने का उपक्रम करता है) खर्च तो रोज़ ही लगे रहते हैं दशहरा तो रोज़ नहीं आता।

सुनयना—(नम्र होकर) मगर आप तो लड़कों को भी मात करते हैं (बनावटी क्रोध से) सरासर फिजूल खर्ची है।

नाथूराम—(पहनाते हुए) मगर सिर्फ दशहरे में क्यू ?

[हंसता है]

सुनयना—(शीशा उठा कर देखती है फिर मुड़ कर नाथूराम की ओर) मगर है चीज अच्छी।

(पटाक्षेप)

—:*:o:*:—

/03-22 MIN12 ECO
8 032919 997029
www.colibrisystem.com

UNIVERSITY OF ILLINOIS-URBANA
PK2098.S534S8 C001
SUBAHA HOTI HAI KALAKATA
3 0112 030694597

जय जन भारती
बंगीय हिन्दी परिषद